धरती की पीर



सब जन्मते हैं सब मरते हैं। अणु विराट में मिलता है और एक दिन तुम और मैं उसी विराट में लीन हो जाएँगे। उस प्रकाश के महापुंज में एकाकार हो जाएँगे जिसकी हम एक ज्योति हैं।

एक

"यह मेरा गुड्डा है।"

"और यह मेरी गुड्डी।"

"तुझे मेरा गुड्डा पसन्द है?"

"बहुत और तुझे मेरी गुड्डी?"

"पसन्द तो है पर नाक जरा चपटी है।

"रामू!" नन्ही बालिका क्रोध में भड़क उठी। आँखें तरेरती हुई बोली "अपना मुँह कभी शीशे में देखा है, जैसा तू वैसा तेरा गुड्डा। मुँह तो कागले[1]-सा सुन्दर है और गुड्डा छि छि छि। मैं ऐसे गुड्डे से अपनी गुड्डी का ब्याह नहीं रचाऊँगी। बेचारी अपने खसम[2] का मुँह देख-देखकर प्राण दे देगी।"

नन्ही बालिका चनणा ने अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। उसके चेहरे पर बाल-सुलभ हठ और क्रोध की रेखाएँ नाच उठी थीं। रामू ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर डाँटते हुए कहा, "तू तो बात

---

१ कौवे। २ पति।

बात में रूठ जाती है। मैंने तो वैसे ही कह दिया।" वह चनणा के सम्मुख खड़ा हो गया। दुलार भरे स्वर में बोला "तेरी गुड्डी पूंगलगढ़ की पद्मिनी से भी फूटरी[1] है। रूप उसके अंग-अंग में समाया हुआ है। चनणा! मेरे गुड्डे की सगाई तेरी गुड्डी से पक्की।"

चनणा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। रामू की ओर स्नेह-भरी दृष्टि से देखती हुई कहने लगी "रामू! अपने गुड्डे की बारात जल्दी से ले आ। देख मेरी गुड्डी बींनणी[2] बनने के लिए कितनी उतावली हो रही है?"

रामू के स्वर में उत्साह भर आया "मैं अभी बारात लाया।"

"बाजे-गाजे के साथ लाना।"

"मैं बाजे-गाजे के साथ ही आऊँगा पर तू भी खातिरदारी जोरदार करना। इधर उधर की लुगाइयों को इकट्ठी कर लेना। गीत गाना नाच कराना! चनणा! ऐसा ब्याह रचाऊँगा कि गाँववाले दाँतों तले अंगुली दबा लेंगे।"

चनणा की मुख-मुद्रा से यह भाव प्रकट हो रहा था कि उसे रामू की नादानी पर तरस आ रहा है। अपने स्वर में हल्का क्रोध लाती हुई बोली "तू रहा गहूघम्मू का गहूघम्मू[3] ही। अरे! मेरे कौन-सी चार-छः गुड़ियाँ बैठी हैं—जो मैं पहली गुड्डी के ब्याह में कोर-कसर रखूँगी।" और वह गुड्डी को अपने गालों से चिपकाकर इस तरह प्यार करने लगी कि जिस तरह कोई माँ अपनी बेटी से प्यार करती है। रामू उसे एकटक देखता रहा। चनणा ने अपनी गुड्डी को चूमते हुए कहा "यह तो मेरी लाड़ली है। इसके पीछे मैं अपना सब-कुछ दे दूँगी।"

रामू ने मुड़ते हुए कहा "अच्छा मैं चलता हूँ। तू बारात की आव-भगत के लिए तैयार रहना। मैं अभी बारात लेकर आया।"

---

१ सुन्दर। २ दुल्हन। ३ मूर्ख।

रामू चला गया।

मनसा झुरिया को अपने दोनों हाथों से पकड़कर एक बार 'झूमर' नाच-नाच उठी। हालांकि झूमर नाच उसने सही ढंग से नहीं नाचा था लेकिन उस नाच की प्रारंभिक झलक उस धरती की नई बेटी में दिखलाई पड़ रही थी।

दोपहर की बेला। सुनसान गाँव का यह भाग। बन्ध्या धरती की मौन पीड़ा। मिट्टी की व्यथा। झिलमिलाती धूप। सूखी झाड़ियों और वृक्षों की गर्म आहें। एक उदास-सा सन्नाटा। एक असह्य शून्यता। एक जलता हुआ साम्राज्य।

उस जलते हुए साम्राज्य में गाँव का कुआँ भुतहा कुआँ।

लोग कहते हैं कि गाँववालों ने एक विधवा को इतना सताया कि वह दुख से हारकर अन्त में इस कुएँ में कूद पड़ी। उसका कूदना था कि कुएँ का शहद-सा मीठा पानी जहर हो गया। पानी की जगह खून भयानक दुर्गन्ध देनेवाला जल निकलने लगा। तब चारों ओर से यही आवाज उठी "डायन डायन डायन! जस कर्म किये वैसा फल मिला। यही नरक है—कुएँ में कूदना मरना सड़ना और अन्त में भूत बनना।"

विधवा डायन हो गई। चर्चा है कि अब भी कभी-कभी मध्य रात्रि को एक आवाज-सी आती है "मैं दुखी हूँ मुझे मत सताओ मत सताओ नहीं तो मैं सारे गाँव का नाश कर दूँगी।"

ज्वालामुखी सैलाब ताण्डव! मृत्यु के पश्चात् कोमल नारी का इतना भयानक हिंस्र रूप!

पर बच्चे निर्भय हैं। भूत और प्रेत सभी तो उनकी अबोध बुद्धि से भय खाते हैं। यही भुतहा कुआँ उनका क्रीड़ा-स्थल है। दोपहर की रामलीला का रंगमंच। पूरी दोपहरी में क्या-क्या नाटक रचे जाते हैं वे गिनाये नहीं जा सकते—झुमका-झुमकुन गुड्डा-गुड्डी राजा-चोर इत्यादि।

जलती धूप में सिहरती दोपहरी। दरारों से भरकर और पत्थरों से

बहती हुई गर्म हवा के झोंके।

कुएँ के दोनों छोरों पर दो साले[1] हैं। उनकी कच्ची-पक्की दीवारों पर हल्का-हल्का भूरा रंग पुता है। दो-दो छोटी खिड़कियाँ हैं और खिड़कियों में किवाड़ों की जगह दो-दो लकड़ियों के क्रास बनाये हुए हैं ताकि रात-बिरात को कोई उचक्का घुसकर कुएँ के जोतने का सामान यानी चौसी ढोल और रस्सी उठाकर न ले जाय।

"शंकर!" रामू ने अपनी साल में पाँव रखते ही पूछा।

"क्या है रामू?"

"बात पक्की हो गई। बारात की तैयारी करो।"

शंकर ने चुटकी बजाते हुए उत्तर दिया "लो अभी तैयार कर देता हूँ।"

दोनों अपनी साल में घुस गये।

कुएँ के दो साले एक बालक और एक बालिका के अधिकार में कर दी जाती थीं। वे दोनों ही उस दिन के नेता होते थे। आज रामू चनणा की बारी थी इसलिए सारे बालक और बालिकाएँ उनकी आज्ञा मानना अपना धर्म समझते थे।

रामू बारात की तैयारी करने में संलग्न हो गया चनणा अगवानी और खातिरदारी की। चनणा के मन में उल्लास का उत्साह का पारावार था। मचलती हुई बोली "कामी मिन्नी गोमती और पन्ना जाओ और बाबा विनायक को मनाओ।"

बालिकाएँ अपने टूटे-फूटे शब्दों में झूम झूमकर गाने लगीं। ऐसा मालूम देता था कि मानो धरती की वेदना और मिट्टी के दर्दभरे गाता वक्ष में यह स्वर खुशी का सागर है।

गीत गूँजने लगा—

---

१ एक प्रकार के कमरे।

"पूरब दिशा में सूर्य देवजी समरथ की
हूँ की देवा बहुत किरण से जगती ।
मालिक तुम बिन और नहीं आशो
वेग पधारो मीरां का पण पत की ।"

संगीत की मादक लय बीच में ही टूट गई । क्षणिक निस्तब्धता ! परस्पर प्रश्न भरी दृष्टि से एक-दूसरे को देखना । घूरना और मन-ही मन कोसना ।

"तुम्हें नहीं आता था फिर बिनायक शुरू ही क्यों किया ?"

"मैंने थोड़े ही किया था मन्ना ने किया ।

मन्ना इस झूठे आरोप से भिड़ गई । अपनी महीन आवाज को गर्म करती हुई बोली, "मैंने कब छेड़ा था इंगाया तो तू मरती रहती है ।"

इस युद्ध । तू तू—मैं मैं का बढ़ता हुआ तुमुल युद्ध की तैयारियाँ ।

"छि छि छि तुमको लाज नहीं आती ! ये सबकी क्या कहेंगे ? लड़की का माथा तोड़ देंगे ।" चमण्डा ने बड़प्पन से कहा । उसकी मुद्रा में एक विधवा राजमाता के दर्शन होते थे जो एक ओर अधिकारों की हैसियत से सबको आज्ञा देती है दूसरी ओर समस्या के समाधान के लिए महान् क्षमता का प्रयोग भी करती है ।

"यह मिन्नी बात-बात पर झगड़ पड़ती है ।"

चमण्डा मन्ना पड़ी "हाथी थोड़ी हलहल मरणी"[1] । मान लो कोई बात हो भी गई तो उसे धीरे से निपटा लेनी चाहिए । कहीं लड़केवालों ने सुन लिया तो अपनी नाक कट जायेगी ।"

हा हा हा

अट्टहास परिहास भरी जोर की हँसी ।

चमण्डा ने देखा शंकर राम जी हँस-हँसकर उनकी खिल्ली उड़ा

---

१ थोड़ी बात पर बहुत हो-हल्ला ।

रहे हैं। उसके तन-मन में आग लग गई।

क्रोध आवेश कँपकपी।

मन में आया कि रामू के बाल पकड़ कर खींच लूँ पर लड़की की माँ ठकुरी बेचारी खून का घूँट पीकर रह गई। लेकिन उसने रामू को जाकर इतना जरूर कहा "तू हँस क्यों रहा है?"

"तेरी हेठी[1] दिखाने के लिए।"

"हेठी दीखे मेरी पगरखी[2]।" और चमना ने जीभ बाहर निकाल कर अँगूठा बता दिया।

क्षण भर के लिए वही शान्ति। वही काँपती हुई दोपहरी। आग-सा जलता हुआ कुएँ का पत्थर।

रामू ने दूसरी ओर से उच्च स्वर में कहा 'बारात आ रही है।'

बारात ने प्रस्थान किया।

नंगे बदन बच्चे ऐसे चल रहे थे जैसे सजे-सजाये बाराती हों। उनकी अकड़ चाल ढाल गजब की! चेहरों पर दौड़ती हुई प्रसन्नता की रेखाएँ कह रही थीं हम धरती पर नहीं चल रहे हैं हम चल रहे आसमान पर!

रामू ने बारात को देखकर कहा 'गीत गाओ!"

बच्चे मौन, विमूढ़ और विस्मित!

सभी एक-दूसरे का मुँह देखते रहे।

रामू ने उत्साह के साथ कहा "मैं शुरू करता हूँ।"

गीत प्रारम्भ हुआ—

"केसरियो लाडो जीवंतो रे,
जीवन्तो जीवन्तो डोले लाडो-
सिया रे डोला रे"

लड़की के पक्ष की औरतों ने घूँघट निकाल लिये। ओढ़नी के नहीं

---

१ नीचा। २ जूती।

इसलिए अपने कुरतों को सिर पर उल्टा करके उन्होंने घूँघट बनाये। इस क्रिया से उनके पेट और कमर उघाड़े हो गये।

गुड्डा ससुराल पहुँचा।

सास चमरा ने क्षण भर के लिए अहम्-भरी दृष्टि बारातियों पर डाली। अपने हाथ से गुड्डे की छाती का नाप किया ताकि गुड्डे की शक्ति का परिचय मिल जाय। कोयले का बना काजल गुड्डे की आँखों में डाला। आँखों में डाल कर ज्योंही उसने काजल उसके गाल पर लगाया त्योंही गुड्डी के पक्ष की औरतें खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

रामू झेंप गया। उसके साथियों पर झूठी घृणा-सी उदासी छा गई। भला दुल्हिनवालों से मात खाना मर्दों का काम है? सबने रामू को धिक्कारा।

सास ने गुड्डे की नाक पकड़कर घर के भीतर लिया। बन्ना को मजाक सूझा—"जवाई जी की नाक न बह जाय।"

वही खिलखिलाहट! वही हँसी का फव्वारा और उल्लास की किलकारी।

गुड्डे और गुड्डी को आमने-सामने बैठाया गया। झूठे-सच्चे मंत्रों का ऊट-पटांग उच्चारण किया गया।

फेरों का समय आया।

रामू ने गुड्डे को अपनी गोद में लिया और चमरा ने गुड्डी को। लड़की के पक्षवालों ने गीत गाना शुरू किया और लड़के के पक्षवालों ने सहायता करने के विचार से उनका साथ दिया।

"पहलो तो फेरो ए लाडो बाबा सा री प्यारी,
दूजो तो फेरो ए लाडी दादा सा री प्यारी,
तीजो तो फेरो ए लाडी काकी सा री प्यारी,
चौथो तो फेरो ए लाडो बीरा जी री प्यारी,
पाँचवों तो फेरो ए लाडी मामा सा री प्यारी,

इक्यां सौ फेरी ए लाड़ी मास्सा की री सारी
सातवों सौ फेरी ए लाड़ी हुई थे पराई ।"

ब्याह हो गया । लड़की पराई हो गई ।

बिदाई की वेला आई । ललणा ने पानी लगाकर आँसू बहाए ।

युग बदले रीति-रिवाजों में परिवर्तन आये । लेकिन बिदाई की वेला के आँसू चिरन्तन हैं, सनातन हैं, न जाने वे कहां छिपे गये पर बहाना जरूरी है ।

दुल्हिन बिदा हो गई । दूल्हा दुल्हिन को अपने घर ले आया ।

खेल खतम ।

सूखा कुएँ पर नहीं घुमता गीरवता । रह गये थे केवल रामू और ललणा । एक दूसरे के सन्निकट ।

चुपचाप ।

"रामू !"

"हूँ !"

"तू घर नहीं जावेगा ?"

"नहीं मुझे तेरे बिना आवड़ेगा¹ नहीं ।"

"क्यों ?"

"तू मुझे मोत चोखी लगती है ।"

"तुझे भूख नहीं लगती ?

"लगती है ।"

"फिर जाकर दुपारी² क्यों नहीं करता ? देख सब चले गये हैं ।"

"तू भी चल ।"

"मैं ?" ललणा अचरज से उसकी ओर देखने लगी । कुछ रुकती रुकती बोली "तेरी माँ लाल-पीली हुई तो ?"

"होने दे तुझे मेरे घर चलना ही पड़ेगा ।" हठपूर्वक रामू ने कहा ।

---

१ मन नहीं लगना । २ दोपहर का नाश्ता ।

उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

चनणा ने हारकर कहा "अच्छा, मैं चलती हूँ पर पहले मुझे एक बार भूत को पुकारने दे।"

चनणा ने कुएँ के टूटे फाटक के छेद में से 'हो' किया। उसकी ध्वनि प्रतिध्वनि बनकर गूँज उठी। चनणा ने अपनी आँखों में भय-सा जगाकर कहा 'देखा रामू! यह उस डाकण[1] की आवाज है। जैसा मैं बोलती हूँ ठीक वैसा ही वह बोलती है। बड़ी चुड़ैल है।"

"मेरा जी तो बैठने लगा है चनणा।" रामू की आँखें स्थिर हो गईं।

"फिर भाग।" और दोनों बच्चे वहाँ से भाग खड़े हुए।

सुनहा कुआँ। निर्जनता। सिहरती-काँपती दोपहरी। बंध्या धरती। जलती हुई मिट्टी की व्यथा। ओह! बिना मनुष्य यह धरती धरती कहाँ? श्मशान नीरवता की बस्ती!

अभी मनुष्य की संतान से यहीं सुनहा कुआँ वृन्दावन बना हुआ था जहाँ जीवन नाचता था और अभी भय का डेरा श्मशान सा!

तब मनुष्य धरती का देवता है, सुहाग है शृंगार है।

• • •

घर के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते उन दोनों के कदमों की आहट निःशब्द हो गई। रामू के मुँह पर हाथ रखकर चनणा ने संकेत से समझाया कि बोल मत नहीं तो तेरी मावड़ी[2] जाग जायगी।

रामू चुप हो गया। दोनों बड़ी सफाई से घर के भीतर घुस पड़े। पर भाग्य का लिखा मिटता थोड़े ही है। न मालूम किस चेतना से प्रेरित होकर माँ ने पुकारा—"रामू है क्या?"

"हाँ माँ।"

"तेरे साथे कुण[3] है?"

---

१ डायन। २ माँ। ३ कौन।

"कमला !" रामू ने डरते-डरते कहा ।

"हूँ !" माँ ने हुंकार भरी । आँखों को मलकर आँचल को ठीक करती हुई बोली—'छोरा[1] क्यों तू उल्टे रास्ते चलता है ? कभी तेरी इसी बात के पीछे तेरे बापा[2] की हड्डियाँ टूटेंगी ।"

'क्यों माँ मैंने ऐसा कौन-सा कसूर किया ?" रामू का भोला भाला चेहरा विवर्ण हो गया । उसके स्वर में दर्द भर आया ।

"तेरा कमला के संग औघट घड़ी रहना अब ठीक नहीं है । यह तेरे गाँव के ठाकुर की बेटी है । कहीं ठाकुर सा विराजी हो गये तो ?" एक अज्ञात भय माँ की आँखों में डोल उठा ।

रामू और कमला निर्वाक बैठे रहे । न हिले और न डुले । माँ ने कमला को डाँटा "तू भी नहीं मानती क्यों गधे की पूँछ की तरह इसके पीछे-पीछे लगी रहती है ? घर से बाहर पग[3] धरनेवाली छोरियाँ चोखी नहीं होती है, समझी ?"

कमला चुप, मूक और निस्पन्द !

माँ का रोष धीरे धीरे कम होता गया । माँ है न । क्रोध आकर जाता है पर कृपालु भी जल्दी बन जाती है । पुचकारकर बोली "सुपारी लोगे ?"

दोनों ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी ।

माँ बाजरे की रोटी और सांगरियों का साग निकालकर देने लगी । दोनों को आधी-आधी रोटी भी बाँट दी । थोड़ी-थोड़ी राबड़ी भी दे दी ।

तब रामू ने अनुनय-भरे स्वर में कहा, "माँ हम दोनों जने एक साथ खा लें ?"

"नहीं !" माँ ने भड़ककर कहा । रामू का चेहरा उदास हो गया । माँ के हृदय पर गहरा आघात लगा । ममता कराह उठी । मातृत्व

---

१ लड़का । २ पिता । ३ कदम ।

विचलित हो गया।

वह मुसकरा पड़ी 'साथ आ लो।"

माँ की इस आज्ञा पर रामू-मनसा को जीवन मिल गया। दोनों साथ-साथ खाने लगे।

रामू के पिता जोखी ने उसी समय प्रवेश किया। मनसा को देखकर बोला "आज रामू को लेकर कहाँ गई थी?"

'कुएँ पर! मनसा ने कौर निगलते हुए कहा।

"कौन से कुएँ पर?"

"भूतवाले।

माँ की आँखें विस्फारित हो गईं। जोखी राम-राम करने लगा। जैसे वह प्रभु से प्रार्थना कर रहा है कि इन नादान बच्चों की रक्षा तू ही करना। ये अबोध हैं, नासमझ हैं, भले-बुरे से अनभिज्ञ हैं। तू अशरण शरण है, इनकी रक्षा तेरे हाथ है।

माँ शांत नहीं रह सकी। डरती हुई बोली, "तुम वहाँ गये ही क्यों थे?"

बालकों का भोलापन कह उठा 'हम तो वहाँ हर रोज जाते हैं।"

"क्या कहा हर रोज जाते हो? हे भगवान! हे सती माई! इन बाल-गोपालों की रक्षा तेरे ही हाथ है। पल भर के लिए माँ समाधिस्थ बनी रही। फिर भड़कती हुई बोली "कान खोलकर सुन लो अब यदि भूल से भी उधर चले गये तो मोड़ा लकड़ी[1] देकर तहखाने में बन्द कर दूँगी। यह तो ईश्वर की कृपा ही समझो कि उस डाकण की नजर से बचे रहे वरना हे भगवान' !" एक माँ अपने बच्चों की बुराई के बारे में सोच भी नहीं सकती। उसने नेत्र मूँदकर भगवान की आराधना की।

जोखी कठोर स्वर में बोला "रामू! कल से मेरे साथ बैठकर काम में हाथ बटाना। सुनार का लड़का गहने बनाना नहीं सीखेगा तो

---

१ घुटनों के बीच से लकड़ी निकालकर बाँधना।

दीवानजी ने अपना घोड़ा वापस घुमाया ।

दूर, बहुत दूर, धूल के बादल उड़ते हुए नजर आये । धूल के बादल जैसे-जैसे प्रासाद के समीप आते गये वैसे-वैसे उनके पीछे आती हुई अदृश्य आकृतियाँ स्पष्ट होती गईं ।

महाभारतकालीन रथ । स्वर्ण और रजत का मिश्रित निर्माण । उसकी दीप्ति । उसकी अनुपम सज्जा ।

उस पर राजा रिसालू विराजमान थे । प्रौढ़ आयु । श्री-हीन मुखमण्डल उनकी किसी आन्तरिक दुर्बलता की साक्षी दे रहा था । वेश और शस्त्रों की साज-सज्जा से ऐसा प्रतीत होता था कि वे आखेट से लौटे हैं । उनके काले कुरूप चेहरे पर चमकती हुई प्रसन्नता उनकी एक आँख से प्रकट हो रही थी ।

रथ के पीछे बीस-पच्चीस सैनिक थे । वे भी शस्त्रों से सुसज्जित थे । उन सैनिकों के चेहरे पर उत्साह की लहरें दौड़ रही थी जैसे वे जिस कार्य के लिए गए थे उसमें सफल होकर आये हैं ।

रथ के तोरण द्वार पर पहुँचते ही सभी ने गम्भीर स्वर में राजा के स्वागत हेतु कहा "खम्मा अन्नदाता नें !

घणी घणी खम्मा !!

राजा रिसालूजी की !!!"

राजा रिसालू का मस्तक अहम् से उठ गया । क्षण भर के लिए उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई ।

रथ प्रासाद के भीतर चला गया ।

प्रासाद विशाल भूभाग में विस्तृत था । उसमें कई भाग थे और प्रत्येक भाग का अपना-अपना अलग महत्त्व था । अपनी इच्छानुसार राजा रिसालू विभिन्न भागों में निवास करते थे ।

आज उनका रथ रंगमहल के सम्मुख रुका ।

वहाँ के ड्योढ़ीदार ने अपना मस्तक झुकाकर 'खम्मा अन्नदाता नें' कहा ।

यह ड्योढ़ीवार पचास वर्ष का लगता था। जीवन के कठोर श्रम से उत्पन्न उसके चेहरे की झुर्रियाँ उसके अडिग विश्वास की द्योतक थी। गहरी गंभीर धँसी हुई आँखें मानो कह रही थी 'मैं एक मनुष्य की ऐसी स्वामिभक्त संतान हूँ जिसने अपने स्वामी की आज्ञा पर अपना सर्वस्व होम डाला। आत्मा, अभिलाषाएँ और सुख न्यौछावर कर दिए। 'स्वामिभक्त मैं हूँ धर्म और मर्यादा का पालक।"

राजा रिसालू को रथ से दो दासियों ने सहारा देकर उतारा। दो अन्य लोगों ने उनके पाँवों के नीचे लाल पाँवड़ा बिछाया ताकि राजाजी के पाँव मैले न हों।

"चतुरसिंह!" राजा रिसालू का भारी-भरकम स्वर गरजा।

"जी हुक्म!" ड्योढ़ीवार की आँखें झुक गई।

"रंगमहल का प्रबन्ध ?"

"हो गया महाराज।

"लो नजराना। राजा रिसालू ने अपने गले का हार चतुरसिंह को दे दिया। चतुरसिंह ने ऊँचे स्वर में कहा 'महाराज की जय महाराज की जय!"

राजा रिसालू सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। सीढ़ियाँ जैसे काँप रही थीं।

"चतुरसिंह!"

चतुरसिंह का सारा बदन अज्ञात आशंका से सिहर उठा। राजा रिसालू का सीढ़ियों के बीच में रुकने का मतलब है कि आज वह अपने स्वामिभक्त सेवक से असंतुष्ट है। उसने भय-विकम्पित स्वर में कहा "हुक्म अन्नदाता।"

"कल कुलदेवी के मन्दिर की प्रथम वर्षगाँठ है, उसका समुचित प्रबन्ध करने के लिए दीवानजी को कह दिया जाय।"

"जो हुक्म।" चतुरसिंह के भाल पर जो पसीना चमकने लगा था वह उसने अपने दुपट्टे के पल्ले से पोंछा।

मद की भाँति गिरते राजा रिसालू के कदम काँपती हुई

सीढ़ियाँ।

राजा रिसालू रंगमहल में प्रविष्ट हुए।

परिचारिका ने मधुर स्वर में कहा—"खम्मा अन्नदाता ने।"

राजा रिसालू ने उसकी ओर देखा तक नहीं। साधारण परिचारिका पर वे दृष्टिपात तक नहीं करते थे।

टन् टन् टन् टन् टन् टन्

घड़ के घंटे ने सूचना दी कि संध्या व्यतीत हो गई है।

रात की कालिमा पृथ्वी पर फैलने लगी। छोटे-छोटे जुगनुओं से तारे आकाश में चमकने लगे। मन्द-मंथर पूर्ण वेग से यौवन की ओर अग्रसर हो रही थी।

'खम्मा अन्नदाता ने खम्मा अन्नदाता ने।" दस दासियों की सुमधुर आवाज रंगमहल में गूंज उठी।

फिर एकदम सन्नाटा मृत्यु-सा मौन शांत नीरव।

एक चिरन्तन आतंक जैसे रंगमहल की प्रत्येक वस्तु में जाग उठा।

राजा रिसालू ने अपनी दृष्टि सब दासियों पर फेंकी। सबकी गरदनें झुकी हुई थीं जैसे किसी ने पाषाण की एक-सी मूर्तियाँ गढ़कर क्रम से खड़ी कर दी हों।

राजा रिसालू अट्टहास कर उठे। दासियों के तन और मन में भय की लहर दौड़ उठी। सबके हाथ यंत्रवत् उठ कर आबद्ध हो गये। विनीत स्वर में कह उठीं "खम्मा अन्नदाता।

रिसालू ने अपना बायाँ हाथ ऊँचा करके कहा "खम्मा।"

अभयदान!

दासियों के होंठों पर मुसकान नाच उठी। ऐसी जैसी गहरे काले बादलों के बीच बिजली।

"महासौभाग्य।" राजा रिसालू ने कहा "इसी प्रकार की शिष्टता हमें पसन्द है।"

इसके बाद तीन दासियों ने उनके वस्त्र उतारे और कुछ मशालें ठीक

करने लगीं।

राजा रिसालू शैया पर तंद्रावश हो बोले, "बन्नू !"

"जी अन्नदाता।"

"नृत्य और गीत !"

राजा रिसालू के हाथ में कुसुम्बे[1] का प्याला देती हुई बन्नू बोली "चतुरसिंह आज नगर-सेठ धनपति की सुकन्या 'कंचन' का अपहरण कर लाये हैं।"

"सेठ धनपति की कन्या !" राजा रिसालू के नेत्र विस्फारित हो गए। उनके अन्तःकरण में जोर का आलोड़न-विलोड़न हुआ। स्वर अवरुद्ध हो गया। वह कुछ देर तक नेत्र मूँदकर शांत रहे, फिर अपने को स्वस्थ करते हुए बोले यह उचित नहीं।

"अन्नदाता !" बन्नू की आँखें सजल हो उठीं। उसे भय था कि कहीं राजा रिसालू की कोपाग्नि की भयावह लपटों में चतुरसिंह की जगह उसे न जलना पड़े।

"जाओ हमें एकान्त चाहिये।

रंगमहल ! विलास का लहराता हुआ सागर, वैभव का आगार। एकदम श्मशान में परिवर्तित हो गया। दासियों की पायलों की झंकार लुप्त ! रसीली वाणी लुप्त ! रिसालू की कठोर आवाज भी लुप्त ! एक शांति और स्तब्धता छा गई।

रिसालू आदमकद शीशे के सम्मुख खड़े हो गये। शीशा अत्यन्त कलामय खम्भों के बीच स्थित था। खम्भों पर स्वर्ण का दमकता हुआ रंग शीशे की शान को बढ़ा रहा था।

अपने मुख को देखकर राजा रिसालू सोच बैठे (मेरी मौज की शक्ति क्षीण हो गई यौवन चला गया सौन्दर्य ने भी मुख मोड़ कर किनारा कर लिया। शेष रह गई वासना, आसक्ति। इसी आसक्ति ने

---

१ अफीम का बनाया हुआ मादक पेय।

मेरे बुढ़ापे की शान्ति और सुख को छीन रखा है। मैं क्यों नहीं उसका परित्याग कर दूं ?"

तभी कंचन उनके मस्तिष्क में सुकुमार और कोमल वासना की भाँति छाने लगी। उनकी रग रग में अधिक शक्ति का आविर्भाव हुआ।

चेतना विवेक और क्षीण उत्तेजना की महामाया में अस्तित्व-विहीन होते गये।

राजा रिसालू ने उन्मादी की भाँति चीखकर कहा, "चन्नू !"

"अन्नदाता !"

"कंचन को उपस्थित करो।"

"जो हुक्म।"

चन्नू चली गई।

राजा रिसालू बेचैनी से रंगमहल में चहलकदमी करने लगे।

साधारण मनुष्य जानता है कि वासना का प्रपंच जितना मधुर होता है उसका अन्त उतना ही विषाक्त होता है। पर कुछ व्यक्ति इस सिद्धान्त के अपवाद भी होते हैं। रिसालू भी एक अपवाद ही थे। अपनी अजेय शक्ति के बल पर उन्होंने जितने पाप किये वे गिनाये नहीं जा सकते। प्रजा पर अत्याचार, किसानों का शोषण और छोटे-छोटे राजाओं पर अमानुषिक आक्रमण—ये सब उनके लिए खेल थे।

उनकी वासना यहाँ तक कुत्सित हो चुकी थी कि उनके कुछ सेवक गाँवों और छोटे-छोटे नगरों में घूम-घूमकर इस बात की सूचना राजा रिसालू को देते थे कि अमुक ठाकुर के यहाँ अत्यन्त रूपवती कन्या का जन्म हुआ है, तब राजा रिसालू अपनी तलवार भेजकर तुरन्त उससे ब्याह कर लेते और उस ठाकुर को आज्ञा देते कि वह उस कन्या का फूल की भाँति पोषण करे।

कंचन ने शलाकों से आलोकित रंगमहल में प्रवेश किया। रंगमहल का सौन्दर्य महक उठा—कंचन के चरण थे।

"सुन्दर !" राजा रिसालू के मुँह से इतना ही निकला।

"अच्छा अन्नदाता ।" कंचन ने शालीनता से सिर झुकाकर प्रणाम किया। उसकी आँखों में भय था। राजा रिसालू की एक आँख चमक उठी। होंठों पर मुसकराहट दौड़ गई।

"कंचन ! हमारा भवन तुम्हें पसन्द है ?" वह आहिस्ता से बोले।

"हाँ अन्नदाता ! अपने राजा का प्रासाद किसे अच्छा नहीं लगेगा। अब ऐसा भवन मैंने कभी नहीं देखा।" वह कुछ सम्हल गई थी।

"इसका मतलब है कि हम तुम्हें पसंद हैं।

"जी।

राजा रिसालू की देह पुलक उठी। कुसुम्बे के प्याले को उसकी ओर बढ़ाते हुए विनीत स्वर में बोले "तब राजा की यह भेंट स्वीकार करो।"

"यह क्या है महाराज ?"

"मादक पेय अफीम का बनाया हुआ मधु पेय" पीओ मैं कहता हूँ पीओ जो मौमोपी मिलेगा।

"वचन दीजिये !"

"वचन तो देता हूँ पर हम एक बात तुम्हारी किसी भी सूरत में स्वीकार नहीं करेंगे ?" राजा रिसालू ने कुसुम्बे का घूंट कंठ से नीचे उतारा।

"क्या ?"

"तुम्हारी मुक्ति की याचना !" राजा रिसालू की आँख अंगारे की भाँति दहक उठी। कंचन के कमल मुख पर ओस से स्वेद कण उभर आये ! वह भय से काँपने लगी।

"क्यों ?" कंचन चीख उठी "मैं आपके मित्र धनपति की पुत्री हूँ आपकी प्रजा हूँ।"

"व्यर्थ का प्रलाप राजा रिसालू को पसन्द नहीं। हम बहुत कम से बहुत अधिक कहने के आदी हैं निर्विरोध हमारे मन की तुष्टि नहीं करोगी तो 'तो " राजा रिसालू की आँख दीवार पर लगी

दीवार पर जम गई। कंचन का खून भय से जमने लगा। उसने कुछ
हने के लिये अपना मुँह खोला पर वाणी अवरुद्ध हो गई। अश्रुओं से
उसका मुख भीग गया। पर उसकी भयभीत आँखें कह रही थीं "ओ
हित ! तेरा पाप तेरा क्षय करेगा। तेरा यह जीवन और विषय-सुख
बन बादलों में चमकनेवाली दामिनी की तरह चंचल और क्षणिक है।
ह तन का ढाँचा रेत के महल की भाँति है। ये तेरे अत्याचार तु
माफ कर देंगे।"

पर राजा रिपाशु ने वही किया जो सदैव करते आए थे।
(कंचन पर बलात्कार, रंगमहल में हाहाकार, धरती के कुँआरेपन
आघात! वेदना का उठता हुआ तूफान आँसू और पागलपन
रंगमहल के चीखते-काँपते गुम्बद बुर्जों पर किसी कोमल पक्षी का बिलखा
स्पर्श। झकझोर मसमसाहट मिट्टी मिट्टी की गोद में! जीवन का म
समर्पण!)

और प्रकृति कुछ काल तक काँपती रही।

तब राजा रिपाशु ने काँपते स्वर में पुकारा "चतुरसिंह!"

"जो हुक्म!"

"काल मन्दिर के आगे अपराधी को हाजिर किया जाय!"

"कौन अपराधी, कैसा अपराधी?" चतुरसिंह विस्मित हो गया।

"कंचन ने आत्महत्या कर ली है।"

"ओह!" चतुरसिंह सारा मामला समझ गया। वह संभलता हुआ बोला "अपराधी आपके सत्य और न्याय के दरबार में हाजिर हो जायेगा।"

"तेरा पुरस्कार! राजा रिपाशु ने अपनी हाथ की स्वर्ण-मुद्रा चतुरसिंह को दे दी। चतुरसिंह के होठों पर मुस्कान नाच उठी जैसे वह समझ रहा था कि वह राजा का सबसे प्रिय पात्र ही नहीं महापात्र है।

पर वह मनुष्य आतंक वासना और धन के चक्र में फँसकर यंत्र हो गया। अद्भुत मानवीय अनुभूतिहीन यंत्र, निर्जीव यंत्र।

तीन

नया प्रभात।

प्राची में स्वर्णिम आभा। अप्रतिम सौन्दर्य का झरना। बिखरती हुई उसकी स्वर्णिम लहरें। सृष्टि का श्रृंगार।

मन्दिर में पतितपावन प्रभु को जगाने की मधुर घंटा-ध्वनि से समस्त नगर में नयी चेतना जाग्रत हो रही थी। सारे नगरवासी मन्दिर की ओर दौड़ चले आ रहे थे। नगर का नियम था कि जब धर्मावतार धर्म-परायण प्रजा-पालक महाराज मन्दिर से देव-पूजन करके निकलें तो हर नागरिक अपने अन्नदाता के दर्शन करके कृतार्थ हो।

देखते-देखते मन्दिर के सम्मुख बड़ी भीड़ जमा हो गई। एक हल्का हल्का कोलाहल उभरकर आकाश पर छा गया।

घंटा-ध्वनि क्रमशः बढ़ती जा रही थी। नागरिकों के मस्तक भक्ति-भाव से विह्वल होकर झुक गये थे।

नगाड़ा बजा।

सबका ध्यान उस ओर चला गया।

नगाड़ेवाले ने उच्च स्वर में कहा "शांत शांत शांत! प्रजाजनों! आज मन्दिर-स्थापना दिवस की प्रथम वर्षगांठ है। आज हमारे लिए महापुण्य पर्व है। त्यौहार का दिन है। अतः दीन-हीन रक्षक महाराज सदैव की भाँति साधारण पूजा नहीं करेंगे बल्कि आज वह महापूजा करके आपके सम्मुख सम्भाषण देंगे। (कुछ श्रीमन्तों सामन्तों एवं उमरावों ने उनसे निवेदन किया कि वह इस महापर्व पर नृत्य और संगीत का भी आयोजन करें लेकिन महाराज ने अपने बुद्धि-कौशल का परिचय देते हुए विनीत स्वर में उनसे कहा है कि धार्मिक उत्सव पर नृत्य-संगीत प्रजा की मनोवृत्ति को सात्विक विचारधारा से हटाकर वासना की ओर उन्मुख करते हैं अतः इस पुनीत पर्व पर नगर की सुप्रसिद्ध कीर्तन मंडली द्वारा अवश्य भजन कराया जायेगा।

प्रजा ने तालियाँ बजा-बजाकर तुमुल नाद किया और अपने प्रजा-वत्सल महाराज को नमस्कार कर उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की।

बंशी ध्वनि का मधुर स्वर प्रजा के कर्ण-कुहरों में मन्दिर का र उड़ेल रहा था। नागरिक भाव-विह्वल होकर झूमने लग थे। तभी पुन नगाड़ा बजा। लोगों ने देखा कि साधारण वस्त्र पहने हुए महाराजाधिराज श्री रिसालू मन्दिर के बाहर पधार रहे हैं।)

तुमुल जयध्वनि चारों ओर गूंज उठी—

"खम्मा अन्नदाता!

घणी-घणी खम्मा!!

राजा रिसालू की जय!!!"

राजा रिसालू ने हाथ ऊँचा करके अपनी प्रजा को शांत किया। उन्हें नमस्कार किया और फिर गम्भीर स्वर में बोले "मेरी पुत्र स प्रिय प्रजा! आज कुलदेवी के मन्दिर की स्थापना का प्रथम पुनीत पर्व है। कुलदेवी की असीम कृपा से हमारा नगर सुखी और समृद्ध है। यही

दूध और घी की नदियाँ बहती हैं।

"हम इस समय इतना ही कहेंगे कि इस संसार में यदि प्राणी अपना उद्धार चाहता है तो उसे ईश्वर की उपासना में लग जाना चाहिये। अपनी समस्त इन्द्रियों को इसी की लगन में मग्न कर देना चाहिये। हमने अनुभव किया है कि जैसे-जैसे व्यक्ति ईश्वर की उपासना में डूबता जाता है, वैसे-वैसे उसकी प्रभु-दर्शन की लालसा तीव्र होती जाती है। यह लालसा प्राणी के हृदय में ज्ञान का वह प्रखर पुंज आलोकित करती है जो उसे प्रभु के आत्मिक सामीप्य की अनुभूति प्रदान करती है। तब मनुष्य के हृदय का सम्पूर्ण राग-द्वेष क्लेश मोह, ईर्ष्या, क्रोध और अहम् इस भाँति मिटता जाता है, जिस तरह सूरज के प्रकाश से घोर अन्धकार।

हम नित्य सवेरे कुलदेवी के मन्दिर में यही प्रार्थना करते हैं कि हे मातेश्वरी! हम पर ऐसी कृपा करो कि हमारी वाणी केवल तुम्हारा ही गुणगान करे हमारे हाथ केवल तुम्हारे ही चरण स्पर्श करें हमारा मस्तक तुम्हारे ही सम्मुख झुके हमारे नेत्र सर्वत्र तुम्हारे ही दर्शन करें हमारे चित्त द्वारा सदा तुम्हारा ही चिन्तन हो और हमारे हृदय में तुम्हारी ही पावन मूर्ति का वास हो।"

इतना कह राजा रिमालू शांत हो गये और कुछ देर तक मौन मंत्र-मुग्ध मुद्रा में खड़े रहे जैसे वह देवी के ध्यान में खो जाना चाहते हैं—(मैं माता के चरणों में लोटकर कहता हूँ कि यह तन यह मन और यह राज्य सभी तुम्हारे हैं। इन्हें मैं तुम्हें सौंप चुका हूँ। मेरा न राज्य है और न प्रजा सभी तुम्हारे हैं। सबमें तू ही तू है। मैं तो केवल तुम्हारी आज्ञा पर चलनेवाला चाकर हूँ। तुम्हारी करुणा की एक बूँद भी हम तुच्छ जीवों पर गिर जाय तो हमारा कल्याण हो जाय।")

लोगों ने देखा कि राजा के नेत्रों में अश्रु छलछला आये हैं। प्रजा श्रद्धा से राजा के सम्मुख झुक गई।

तभी राजा का स्वाभाविक कठोर स्वर सुनाई पड़ा पर प्रजा को यह नहीं भूलना चाहिये कि हम राजा हैं। हमारे अपने

हमारा अपना प्रथम धर्म है। वह धर्म है कि प्रजा और राज्य की समृद्धि के लिये राजनीति का सहारा लेना। अन्याय और अधर्म को मिटाना प्रजा में फैले असन्तोष और विद्रोह का दमन करना। यदि कोई राजा ऐसा नहीं करता है उसे राजा नहीं कहा जा सकता। उसे सिंहासन पर बैठने के लिये आज्ञा नहीं दी जा सकती। ऐसे नपुंसक राजा को अपना भार सहर्ष किसी और को सौंप देना चाहिए। राजा का स्वर पुनः विनीत हो उठा 'मेरी अजेय शक्ति! जब हम ईश्वर के चरणों में लोटकर सद्बुद्धि का दान मांगते हैं तो प्रभु कहता है कि तुम राजा हो तुम तो स्वयं मेरा एक अंश हो समर्थ हो देने की क्षमता रखते हो फिर मांगना कैसा? जब हम अपने आप को ईश्वर का अंश समझते हैं तो हमारे हृदय में एक पवित्र अमर ज्योति का दर्शन होता है, और उस ज्योति के महाप्रकाश में हमें पाप और पुण्य के भेद का ज्ञान होता है। कर्तव्य और प्रेम का भान होता है।

'तब हम अपराधी की भाँति नम्र होकर उस महाशक्ति के सम्मुख प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! जब तुमने मुझे अपना अंश देकर रचा है और प्रजा के पालन हेतु मुझे जनमाया है तो कृपा करके इस मन में तुम्हारी उत्पन्न की हुई किसी भी वस्तु के प्रति मेरा मोह जागृत न हो। मुझे केवल राजा के कर्तव्य की ओर सजग रखना। प्रभो! तू कृपा-निधान है दयासागर है सर्वज्ञ है।"

राजा रिसालू ने नैन मूंदकर हाथ जोड़े। सारी प्रजा ने अपने राजा का अनुकरण किया।

तभी उस गहरी शून्यता को भेदता हुआ सेठ धनपति का कांपता और चीखता स्वर सुनाई पड़ा 'दुहाई है अन्नदाता दुहाई है।"

जैसे शांत सागर में निमिष मात्र में तूफान आ जाता हो वैसे ही धनपति के आर्तनाद ने वहाँ की शांति में हलचल पैदा कर दी। प्रजा ने देखा सेठ धनपति अपनी मृता बेटी का शव अपने दोनों हाथों में लिये मन्दिर की ओर बढ़ रहे हैं। बेटी का मुख रक्तरंजित है। दोनों हाथ और पाँव लटके हुए

है। मैंढ़ के मुक्ता सदृश दाँतों ने उसके कोमल होंठों को काटकर विकृत कर दिया है।

प्रजा में भय संचरण हो उठा। 'यह क्या हुआ' इतना वाक्य प्रजा के होंठों और आँखों में आया और समस्त जन-समूह पर छा गया।

देखते-देखते धनपति राजा के सम्मुख आ पहुँचा। बेटी के विकृत शव को मन्दिर की सीढ़ियों पर रखते हुए करुण स्वर में बोला "अन्नदाता! धनपति का गला शोक से अवरुद्ध हो गया और वह निढाल होकर अपनी बेटी के शव पर पड़ गया।

राजा रिसालू कुछ देर तक मौन खड़े रहे। प्रजा पर दृष्टिपात करके उन्होंने आवेश के साथ कहा "यह अत्याचार किसने किया?"

धनपति ने रोते रोते कहा "कंचन का शव प्रासाद के बाहर पाया गया है।"

"क्या कहा प्रासाद के बाहर!" राजा ने देखा कि प्रजा में चोर की कानाफूसी होने लगी है।

राजा रिसालू ने दहाड़कर कहा 'हमारे राज्य में ऐसा नृशंस कार्य करनेवाला कौन पैदा हो गया? यह अक्षमणीय कृत्य अमानुषिक अत्याचार, अधर्म! महामंत्री दीवानजी सेनापतिजी! अपराधी का तत्काल पता लगाया जाय?"

तीनों तत्काल अश्वारूढ़ होकर रवाना हो गये।

राजा रिसालू धनपति के समीप आये। उन्हें उठाकर अपने वक्ष से लगाया। सांत्वना देते हुए बोले "ईश्वर ने कहा है कि जो हो गया है उस पर पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। मृतक पर आँसू बहाने और दुःख प्रकट करने से उसकी आत्मा को महा कष्ट होता है। इसलिये भगवान् को स्मरण करके उसकी आत्मा को शान्ति पहुँचाओ।"

राजा रिसालू कंचन के शव को अपने दोनों हाथों में उठाकर मन्दिर के समक्ष आये। देवी से प्रार्थना की और प्रजा की ओर उन्मुख होकर दुःखभरे ऊँचे स्वर में बोले "प्रजाजनो! आप इस विकृत

को देख रहे हैं। यह अत्याचार किसी मानव का ही तो है? उस मानव का है जिसने जकर सौन्दर्य पर आसक्त होकर इस कली को नोचा है। भगवान् ने भी कहा है कि विषय-सुख में अन्धे मनुष्य के ज्ञान-चक्षु विषय की कल्पनामात्र से बन्द हो जाते हैं और वह मद में डूबे दैनिक का स्वरूप बन जाता है, जिसका कार्य सिर्फ यही होता है—नाश विनाश, सर्वनाश एक पतित पुरुष ने इस पावन प्रतिमा का नाश कर डाला। एक अपवित्र हाथ से कोमल फूल मसल डाला मोड़! कितने दुःख की बात है!" कुछ देर बाद राजा रिसालू अपने स्वर पर दबाव डालते हुए बोले अब राजा का कर्तव्य क्या कहता है? उसका न्याय और धर्म क्या माँगता है? अपराधी इसका हत्यारा? और हत्यारा कहाँ मिलेगा? इस नगर में? कौन होगा? प्रजा का एक व्यक्ति ही! तब राजा न्याय की रक्षा हेतु निर्दोषों को सतायेगा डरायेगा पीटेगा? निर्दोषी राजा की बुरी कामना करेंगे उसके नाश की प्रार्थना करेंगे। पर राजा जब तक उसने अपराधी का पता न लगा लेगा तब तक शांत नहीं बैठा रहेगा!"

प्रजा निर्जीव! जन-समूह निस्तब्ध, सकते के आतंक जैसे उनकी वाणी स्पन्दनहीन हो गई हो।

'हम ईश्वर के अंश हैं। उसकी आज्ञा पर अपराधी को कहते हैं कि वह हमारे सम्मुख आ जाय।"

प्रजा में क्षणिक हलचल मची जो राजा की आवाज के साथ पुनः जड़ हो गई।

"अपराधी स्वेच्छा से उपस्थित नहीं होगा पर हम सेठ धनपति को विश्वास दिलाते हैं कि अपराधी का पता लगते ही, उसका एक शब्द सुने बिना ही उसे मृत्यु-दंड दे दिया जायेगा।"

तभी चतुरसिंह ने ऊँची आवाज में कहा "अन्नदाता ने खम्मा! अपराधी हाजिर है।"

प्रजा में हलचल विस्मय और भय।

राजा रिसाम् ने आज्ञा दी "इस नारकीय जीव को जलती आग में झोंक दो। पहले यह वासना की आग में जला था और अब इसे अपने पाप की आग में जलने दो।"

अपराधी ने चीखकर कहा "मैं निरपराध हूँ।"

"ले जाओ इसे। वासना के वशीभूत अपराध करनेवाला प्राणी उस उन्माद से मुक्त होने पर यही सोचता है कि वह निरपराध है। उसे वह पाप स्वप्न में किया हुआ जान पड़ता है। लेकिन वह महा अपराधी होता है पामर! इस कोमल कंचन को देखा है। फूल को निर्दयता से मसलने की आज्ञा तो हमारा देवता और हमारे कुल की माँ भी नहीं देती। ले जाओ इसे।"

अपराधी को रोते-चीखते ले जाया गया।

प्रजा ने धीमे स्वर में राजा रिसाम् की जय-जयकार की।

• • •

राजा रिसाम् का रथ प्रासाद की ओर चला। रास्ते में जो भी मिला उसने उनकी जय-जयकार की। पर उनका मन आज उद्विग्न था।

रथ प्रासाद के शीशमहल की ओर जा रहा था जो रामरता[1] कहलाता था जिसका निर्माण चतुर कारीगरों द्वारा सम्पन्न हुआ था और जिसकी दीवारों में केवल शीशे ही शीशे जड़े थे। ये शीशे बहुत ही छोटे-छोटे थे और यही वजह थी कि शीशमहल में एक दीपक जलते ही सहस्र और आलोकित हुए दीप जलते थे और महल प्रखर प्रकाश से जगमगा उठता था।

इस महल में राजा रिसाम् की नई रानी रहती थी। नई रानी से मतलब था कि यह रानी भी अपने बाप की वह लाड़ली बेटी थी जिसको उसके बाप ने राजा रिसाम् की आज्ञा से फूल की तरह पालकर ठीक समय उनके हवाले कर दिया था जैसे कोई देवी दान हो।

---

१ रम्य-पुर।

चार

बचपन की मधुर किलकारियाँ यौवन की धमक मचकाम में बदल गईं। मिट्टी की व्यथा उसके दर्द का पान कर दो सम्मुक्त हृदयों के प्रेम-अर्पण से भर चुका था। खेतों की बालें झूमने लगी थीं और पेड़ पौधे लहलहा उठे थे। अमित सौंदर्य का झरना गाँव के कण-कण में प्रवाहित हो उठा था। एक अपरिमित आनंद एक अपराजेय उत्साह, एक प्यार-भरा बोध चारों ओर फूट पड़ा था मानो संध्या धरती ने नई अंगड़ाई ले ली हो। वधू बनकर सज-सँवरकर आ गई हो।

रामू और चनणा और उनका अलौकिक प्रेम!

यौवन और यौवन की उत्ताल तरंगें!

प्रभात!

मादक समीर और उसकी मीठी-मीठी हिलोरें। हरा-भरा खेत उसकी झुटपुट और झुटपुट में रामू और चनणा!

"रामू!" चनणा का स्वर अधीर था।

क्या ?"

"माँ कहती थी कि अब तेरा रामू के साथ खेलना अच्छा नहीं है।"

रामू का स्वर गम्भीर हो गया। वह अन्तरिक्ष की ओर अपनी दृष्टि जमाते हुए बोला "ठीक कहती है तेरी माँ अब हमारा साथ-साथ खेलना अच्छा नहीं है।"

"क्यूँ ?" धनका की आँखें अज्ञात विस्मय से विस्फारित हो गईं।

"हम मोट्यार[1] हो गये न ?" रामू इतना कहने के साथ-साथ उदास हो गया "धनणा ! इन गाँववालों को हम अच्छे नहीं लगते। क्यों अच्छे नहीं लगते तू जानती है ?"

"नहीं।"

"मैं जानता हूँ।"

"मुझे भी बता न ?"

"मैं सुनार का बेटा हूँ और तू ठाकुर की जाई। कैसे मेल होगा तेरा और मेरा ? मुझे बड़ा डर लगता है।"

"पर मैं नहीं डरती। प्राण लगी[2] फिर डर कैसा ?" धनणा के कोमल मुखमंडल पर दृढ़ता की गहरी रेखायें खिंच गईं। उसने रामू का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा "रामू ! जीवन की डोर जिससे बँध गई है वह क्या इतनी आसानी से टूट सकती है ? प्रेम इतना कच्चा नहीं।"

"प्रेम इतना कच्चा नहीं है तो समाज भी इतना कच्चा नहीं। तेरा बाप ठहरा ठाकर, गाँव का माई-बाप क्या वह हमारा साथ-साथ रहना पसन्द करेगा ?"

"न करता है तो न करे, पर मैंने जिसे आराध्य मान लिया है उसकी आराधना में अपना सारा जीवन न्यौछावर कर दूँगी। मैं ठकराइन की बेटी जरूर हूँ रामू, पर मैं एक नारी भी हूँ मेरे हृदय भी है।

---

१ जवान। २ प्रेम हुआ।

इस हृदय में प्रेम है, पवित्र प्रेम ! इसलिए इस मानस-मंदिर में सिवाय तेरे किसकी मूर्ति का वास हो सकता है ?"

राम् के मन को ममता के शब्दों से ढाढ़स अवश्य बँधा पर उसने डरते हुए कहा "पर मुझे सदा डर लगता है। ममता बुरी-बुरी शंकायें मेरे मन में उठती रहती हैं। ऐसा मालूम होता है कि कोई मुझसे मेरी प्यारी ममता को छीनकर ले जा रहा है।

ममता के चेहरे पर कठोरता आ गई और स्वर में दृढ़ता "तू डरता है तो डरा कर, मैं नहीं डरती। मैंने जिसे अपना सर्वस्व स्वीकार कर लिया है उसके अतिरिक्त अन्य किसी की कल्पना ही नहीं कर सकती। जीवन और हृदय वस्तुएं तो नहीं हैं कि जिनका व्यापार बार-बार किया जा सके खरीदी और बेची जा सके राम् ! हृदय जब प्रेम के प्रकाश से आलोकित हो जाता है और जीवन प्रेम की मन्द-मन्द लहरों पर बहने लगता है तब उसका मूल्यांकन कोई नहीं कर सकता। वह सर्वोपरि बन जाता है। वह जिसके ध्यान में मग्न होता है उसे ही प्राप्त करता है। बाधायें और कष्ट तो आते हैं विरोध और प्रतिरोध भी होता है पर इसका मतलब यह नहीं कि हम अपने पवित्र पथ से विमुख हो जायें" उसने एक लम्बी आह छोड़ी "राम् ! इस तन का तू प्राण है, प्राण के बिना यह तन मिट्टी के बराबर है, निर्जीव मांस-पिंड है तुम्हीं तुम प्राण हो बोलो मुझसे बिछुड़ोगे तो नहीं ?"

राम् भाव-विह्वल हो उठा। स्वर में प्यार का सागर उड़ेलते हुए धीमे स्वर में बोला "ममता ! तुमसे अलग होने की मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे तेरा अस्तित्व ही मेरा अस्तित्व है। लेकिन मैं अपने लिये तुझे दुःखी नहीं देख सकता कष्ट उठाते नहीं देख सकता। मेरी सदा कामना रहती है कि तू बसंत की भाँति झूमती रहे, इठलाती कली की तरह अपना सौरभमय सौंदर्य बरसाती रहे स्वच्छन्द पंछी की भाँति चहकती रहे। पर कोई मेरे लिये तुझे चरित्रहीन कहे, लांछन लगाये, कलंकिनी कहे, यह मैं नहीं सह सकता, प्रेम प्राणी

को पूजनीय बनाता है, सृष्टि की दृष्टि में सम्मान दिलाता है, यदि हमारा प्रेम हमें पतनोन्मुखी बनाये तो हमें अपने अटल निश्चय से हट जाना होगा।"

चनणा धरती की ओर संकेत करती हुई बोली "कंवारी धरती कभी न कभी किसी की वधू बनेगी ही। किसी न किसी को वह अपना समर्पण करेगी ही। धरती वधू और समर्पण! यही तो विश्व का आवर्तन है रामू! चिरन्तन नियम है, जगत की रीति है मैं तेरी हूँ और तू मेरा है इसी छोटे से वाक्य में ही तो संसार का महान् अपनत्व है।"

रामू के नैन मुंद गये।

विमुग्ध विमोहित और तन्मय होता हुआ वह वेद-मंत्र की भाँति चनणा के वाक्य को उच्चारित कर बैठा "मैं तेरी हूँ और तू मेरा है इसी छोटे से वाक्य में ही तो संसार का महान् अपनत्व है।"

कुछ क्षण बाद रामू ने नैन खोले।

प्रकाश!

"चनणा?"

इधर-उधर झांका पर चनणा का कोई पता नहीं था। फूल की भाँति खिलकर रामू हँस पड़ा "चनणा! तू बड़ी विचित्र है भगवान् जिस तरह भक्त से आँख-मिचौनी खेलता है। मुझसे उस तरह तू चनणा! ओ चनणा!!"

स्वर ध्वनित प्रतिध्वनित!

शहनाई का मधुर संगीत! उस पर ढोलू[1] की हृदयवेधक धुन। धीरे-धीरे उभरती हुई लय—मादक और रसीली लय। रामू ने देखा—चम्पू! गाँव का जमाई होगा। मस्त। बेफिकर। उसे उठावना और चनणा के लिये बेचैन देख अपनी शहनाई में विरह की धुन छेड़ बैठा है।

१ ढोल।

वातावरण में दर्द तैर उठा है। प्रकृति दुखमय हो गई है। व्यथा उफन और विरह का साम्राज्य एकाधिपत्य।

शहनाई गूंज रही है—

—चोखी घोरी ए मरुकरिया
मोमुखी मपाय कठै बाम्पाजी ढोला
—हो चोरी रे घोमू भरे ढाला म्हें करौं
हो म्हौरी करै नहीं कोप जी रे ढोला
—हो म्हा घोमू रे ढोला कारणै
हो भुर भुर हूं पीजर होय जी रे ढोला
—हो चमचम चमके ढोला बीजली
हो रिमझिम बरसे मेह जी हो ढोला

शहनाई का स्वर क्रमशः वेदनामय होता हुआ समीप आता गया। स्वर जितना वेदनामय था रामू की आकृति उतनी ही प्रसन्न थी। दो विपरीत भाव थे—अन्तर और बाह्य के विरह और मिलन के दुख और सुख के।

चम्पू रामू के चारों ओर नाच-नाचकर घोमुखी गा रहा था। रामू ने हँसते हुए कृत्रिम डाँट के साथ कहा "ओ शहनाई के बाप राम अलापना बन्द करेगा या हमें कष्ट उठाना पड़ेगा।"

चम्पू और तन्मय तथा रसमय हो गया।

लाचार रामू को उसे पकड़ना पड़ा।

शहनाई रुक गई। व्यथा से निरोहित वातावरण क्षणिक स्तब्धता से पथाचर हो उठा। चम्पू रामू को विचित्र दृष्टि से घूर रहा था।

ऐसे क्यों देख रहा है मुझे ?"

"देख रहा हूँ, तू वही रामू है न ?"

"तो क्या मैं बदल गया हूँ ?"

"सूरत तो वही है लेकिन मन बदल गया है।"

"क्या मतलब ?"

तेरा बूढ़ा बाप यहीं और रोटी लिये लड़के से बैठा-बैठा तेरी उडीक[1] कर रहा है और तू जमना के साथे[2] आनंद लूट रहा है 'रामू भैया'! गाँववाले विशेषकर राजपूत तुमसे नाराज हैं। तू उनकी बेटी पर'

"नाराज हैं तो होने दे मैं किसी से नहीं डरता। आग लगी फिर डर कैसा!" रामू ने जमना की बात दोहराई।

• • •

रामू जब घर पहुँचा तब जोखी घर की बैठक में बैठा-बैठा ऊँघ रहा था। उसकी माँ रसोई में खाना पका रही थी। रसोई से फली के साग की सुगन्ध आ रही थी।

"माँ! ओ माँ!!" रामू ने बाहर से पुकारा।

जोखी चमक पड़ा। फटे हुए ढोल की तरह अप्रिय स्वर में ताड़ना देता हुआ बोला "ओ जोखी के बाप! थोड़ा इधर पधारो तो!"

रामू के पाँव जमीन से चिपक गए। भय के मारे निःशब्द पाँव उठाता हुआ वह जोखी के सम्मुख गया। अपने अपराध से स्वयं परिचित अपराधी की भाँति नीची गर्दन करके वह मौन रहा।

"कहाँ मरा था?"

"खेत।"

"किसके खेत?"

"ठाकुर सा के।"

"क्यों? क्या वहाँ कोई गड़ा धन पड़ा हुआ है कि इधर पौ फटी और उधर उमरावजादे पहुँचे।" उसका स्वर तीव्र हो गया "बता वहाँ क्यों गया था?

"

बोलता क्यों नहीं क्या तेरी जीभ को लकवा मार गया है, हराम

---

१ प्रतीक्षा। २ साथ।

जाये !" जोखी अच्छी तरह जानता था कि रामू खेत क्यों जाता है, पर वह आज रामू के मुख से सुनना चाहता था कि वह वहाँ क्यों जाता है। जमीन पर हाथ पटकते हुए वह पुनः दहाड़ा "मैं कहता हूँ कि तू बहरा हो गया है।

बड़ी कठिनता से रामू ने कहा "चनणा से मिलने

"चनणा से मिलने जोखी की आँखों से अंगारे बरस रहे थे "चनणा क्या तेरी मंगेतर है या तेरी घरवाली ? लोक-लज्जा को त्याग कर तूने यह क्या जाल बना रखा है ? कभी गाँव की राजपूती टोली तेरी बोटी-बोटी काट डालेगी।

रामू कुछ बोला नहीं। व्यथा उसके मानस में घुमड़ रही थी। अश्रु उसकी आँखों में छलछला रहे थे। जोखी का हृदय भी द्रवित हो उठा। कुछ देर पूर्व उसके अन्तर में घृणा और क्रोध का जो तूफान था न जाने करुणा की किस भावना से भीगकर वह लुप्त हो गया। रामू के सन्निकट आकर अपने काँपते हाथों से उसके मुँह को पकड़कर स्नेह पूरित स्वर में बोला "बेटा ! भगवान् की कृपा से तेरा मुँह इस बूढ़े ने बड़ी देर से देखा है। तुझे कुछ हो गया तो इस बूढ़े का सहारा ही टूट जायेगा बुढ़ापे की लकड़ी ही टूट जायेगी जन्म ही अकारथ हो जायेगा।"

"बाबा ! रामू का हृदय ममता के कारण फट गया।

"हाँ बेटा गाँव की राजपूत टोली में भी कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो चनणा को अपने हृदय की रानी बनाना चाहते हैं। वे अपना पलड़ा कमजोर देखकर तुझ पर टूटेंगे और कभी घात लगाकर तुझे मारने का यत्न करेंगे। जोखी का स्वर अत्यन्त करुण हो उठा "बेटा ! तू ने अपनी बूढ़ी माँ को देखा है जो केवल तुझे देख-देखकर अपने जीवन के शेष दिन बिता रही है।"

माँ भी आ गई।

रामू को रोता देखकर अपने पति को ही डाँटने लगी "आप तो

मेरे रामू के पीछे ही लग गये। दो घड़ी चमरा से हँस-बोल क्या लिया जैसे कोई घोर अपराध कर दिया? "ज़रा सोचिये तो बचपन की दोस्ती है, कच्ची डोर नहीं टूटेगी तो धीरे धीरे टूटेगी रामू के बापू हृदय के बन्धन हैं हृदय के! मनुष्य के चाहने से न टूटते हैं और न बँधते हैं। वह रामू का हाथ पकड़कर बोली "चल पहले रोटी खा ले।"

रामू अपनी माँ के साथ रसोई में आ गया। माँ उसे भोजन परोसती हुई बोली "तेरे बाबा की बात सौलह आने ठीक है रामू। चमरा के संग अब खेलना और घूमना अच्छा नहीं। सारे गाँव में तुम दोनों की चर्चा है।"

रामू भावातिरेक होकर बोला "माँ! तुम सभी ने हमको पहले मिलने ही क्यों दिया? बचपन में मना कर देते तो आज रामू का कौर कंठ में अटक गया। वह बिना खाये ही उठ गया।

"अरे, तू खाना क्यों नहीं खाता?"

"भूख नहीं है।"

फिर जा ज़रा बापू को अपने काम में सहारा दे।"

रामू उसी कमरे की ओर खिन्न मन चला गया जिस कमरे से ठक्-ठक की आवाज़ आ रही थी।

पाँच

खेत के मध्य एक मचान बना दी गई थी। उस मचान पर एक बाँसुरी पड़ी थी। अकेली और निर्भय!

कौन उसका स्वामी है और कौन उसको अपने होंठों से लगाकर जीवन में नयी प्रेरणा का संचार करता है, कोई नहीं जानता? वह अकेली पड़ी थी जैसे भगवान श्रीकृष्ण की बाँसुरी यमुना के तीर।

सन्ध्या हुआ है क्योंकि घास की सरसराहट मिट्टी की सौंधी-सौंधी सुगन्ध।

और शून्यता एकदम निर्जनता!

तभी किसी के हल्के पदचाप सुनाई पड़े।

पवन स्तब्ध हो गया और खेतों की धवल बालें एकदम गतिहीन हो गईं जैसे कोई अपरिचित आ रहा है। वर्णरिक्त धरा उसके कोमल चरणों के स्पर्श से तिरोहित हो उठी। तभी तो उसकी पदध्वनि को अपने अन्तस में लुप्त कर रही थी ताकि उस पावन ध्वनि को कोई दूसरा न

सुन ले। अपरिचित अज्ञात और मुकुल कदम मचान की ओर बढ़ रहे थे। धीरे धीरे आकृति स्पष्ट हुई। सेत की बालों ने देखा—मोला यौवन सहमा-सहमा-सा चला आ रहा है।

युवती मचान के समीप आई। उसका रंग गोरा चिट्टा था और मुख पर शील का आमर लहरा रहा था। आँखें हिरनी-सी थीं और भौहें तीर-कमान-सी।

वह अज्ञात यौवना मचान के समीप आकर रुक गई। कृष्ण की बाँसुरी उसी निर्जनता से पड़ी थी। वह निर्निमष दृष्टि से बाँसुरी को देखती रही और देखते-देखते वह फफक-फफककर रो पड़ी। रोते रोते उसने उस बाँसुरी को उठाया और उसे अपने मदुल अधरों का पवित्र चुम्बन दे दिया। चुम्बन देकर वह पुनः अपलक उसे देखती रही जैसे वह बाँसुरी में कुछ अपनत्व और परिचय पाजना चाहती है।

निसन्देह बाँसुरी कृष्ण की थी। सम्मोहन की साम्राज्ञी और प्रीत की सात्विक धारा प्रवाहित करनेवाली शाश्वत स्वर-मोहिनी।

युवती ने कोमल स्वर में मन-ही-मन कहा "बावरी राधा का हृदय !"

राधा !

कृष्ण की सर्वस्व अर्पणकर्त्री उसकी क्षणिक विस्मृति में परम व्याकुल होनेवाली वही राधा प्रेम-दीवानी ! उसका प्रेममय अन्तर, यही बाँसरी ! कृष्ण की बढ़ाई में राधा की सच्चा संतोष और सांत्वना !

वह विचारों के तूफान में उड़ती गई। फूल की तरह उस सरित कूल से टकरा-टकरा प्रवाहित हो गई जिसे एक दिन सागर के महा अस्तित्व में सम्मिलित होना है और वह प्रवाहमान प्रसून ?

धीरे-धीरे अपना मारुत मकरंद जल में विसाता हुआ सड़ जायेगा मिट जायेगा।

युवती के नेत्र पुनः भर आये।

उसने बाँसुरी अपने अधरों से लगाई और राधा की तरह वह उसमें प्राण फूँकने लगी। स्वर के आरोहन-अवरोहन में घुल-घुल मिलाप

विलाप और प्रणय की सच्ची अनुभूति की एक पुकार थी— 'ओ बंसीवाले तू कहाँ है मैं तेरी स्मृति में अनन्त काल से भटक रही हूँ। मुझे दर्शन दे और मेरे संताप को हर।

बाँसुरी का मधुर स्वर गूँज रहा था।

तभी आ गया—चम्पू!

सुनता रहा और भावना के कोमल पंख पर उड़ता रहा।

स्वर रुका।

आगन्तुक एक पेड़ की ओट में छुप गया। देखने लगा कि युवती क्या करती है?

युवती ने बाँसुरी को पूर्ववत् रखा और फिर अपने अश्रुओं को पोंछने लगी। अश्रु पोंछकर उसने एक लम्बी श्वास ली और फिर शान्तचित होकर मचान के नीचे बैठ गई।

आगन्तुक उसके सम्मुख आया।

देखता रहा सोचता रहा 'यह कौन है?

युवती ने उसे देखा। वह सिहरकर रह गई।

'तू कौन है?' चम्पू ने पूछा।

युवती चुप रही।

'मैं पूछता हूँ कि तू कौन है?

युवती फिर भी चुप!

चम्पू जरा तिरत स्वर में बोला 'बोलती क्यों नहीं चुप क्यों है?'

युवती को अचानक घुर्णा! उसके काँपते अंग-प्रत्यंग!

चम्पू को गुस्सा आ गया। उसने उस युवती को पकड़कर उठाया और जोर से बोला 'तू नहीं बोलेगी तो मैं तुझ ठाकुर के पास ले चलूँगा वर्ना मुझे बता दे कि तू कौन है? कहाँ से आई है? क्या चाहती है? इस गाँव में तेरा कौन है?"

युवती इस बार भी नहीं बोली।

चम्पू को क्रोध आ गया।

उसने चीखकर कहा "तू गूँगी है ?" और उसने झकझोर दिया। युवती के अधर काँप रहे थे और वह अवसन्न-सी चम्पू को देखने लगी। वह जड़ हो गई थी। उसके कंठ में आदिम-आवेग फँस गया था। एक क्षोभ-भरा रोदन उसके हृदय को कचोट कर भीतर ही भीतर घुटाने लगा। चम्पू हक्का-बक्का खड़ा रहा। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसने ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया कि जिससे इस युवती को इतना गहरा कष्ट पहुँचा। वह करुणाभरी दृष्टि से उसे देखने लगा।

बहुत ही आहिस्ता से उसने पुनः पूछा "तू कौन है ? बोलती क्यों नहीं ? मुझे सब बता दे मैं तुम्हें कुछ भी नहीं कहूँगा।"

युवती क्षण भर के लिए उठी और धम-धम से बैठ गई। उसकी आँखों में अबाध निर्झर की भाँति करुणा उतर उठी। वह रहकर व्यथा की तरंगें उसके तमाम शरीर में दौड़कर उसे व्यग्र कर रही थीं। उसने अपने मुख के अश्रुयुक्त विपुल सौंदर्य को अपने हाथों से ढक लिया।

चम्पू पराजित होकर मकान के एक किनारे खड़ा हो गया। वहीं से करुण संयत स्वर में बोला "यदि तू नहीं बताना चाहती है तो मत बता। मैं केवल यह जानना चाहता था कि तू इस गाँव में क्यों आई ? कहीं तू गूँगी तो नहीं है ?"

युवती आहत साँपन की तरह उठी।

चम्पू सहम गया। मैंमना। उसे आशंका हुई कि कहीं यह युवती पागल तो नहीं है ? जरूर पागल है। अभी रोती थी और अभी चंडी की तरह विकराल हो गई। अद्भुत प्रकृति !

पर युवती का क्रोध विरल सुर क्षण भर में ही इतना करुणाजनक हो गया कि चम्पू स्वयं विमूढ़ हो गया।

युवती बड़ी नाटकीयता से उसकी ओर बढ़ी और झुककर उसने चम्पू का हाथ पकड़ा। चम्पू सिहर उठा। युवती ने अपनी जीभ को बाहर निकाला। चम्पू चीख के साथ खड़ा हो गया। उसकी निर्दोष

आकृति वेदना से विकृत हो गई। हृदय में दुःख घुमड़ पड़ा। बोलना चाहा पर कंठ अवरुद्ध हो गया। कठिनता से पूछ बैठा "यह कैसे हुआ? क्या तू जन्म से ही ऐसी है?"

युवती जमीन पर बैठ गई।

खेत की मिट्टी गीली थी। युवती ने मिट्टी को समतल किया और उस पर लिखा—"मेरी जीभ काट दी गई।

"ओह! तेरी जीभ काट दी गई!" चम्पू ने करुण स्वर में इस शब्द को दोहराया और उसके निकट बैठता हुआ धीमे से बोला "तू कहाँ की रहनेवाली है?"

उसने धरती पर फिर लिखा "दक्षिण की।

"कौन हो?

"अनाथिन।"

"अनाथिन! हीनता का सूचक यह शब्द दया से आप्लावित था। चम्पू ने विगलित स्वर में उसकी बाहुओं को पकड़ते हुए कहा "तू भूखी है?"

उसने गर्दन हिलाकर 'हाँ' की स्वीकृति दी।

चम्पू ने मचान के एक ओर बाँधी हुई बाजरी की मोटी-मोटी रोटियाँ खोलकर उसके सामने रख दीं। युवती ने रोटी के एक टुकड़े को तोड़कर अपने मुँह में रखा। रोटी स्वादिष्ट थी। युवती उसे बड़े प्रेमपूर्वक खाने लगी।

चम्पू एकटक दृष्टि से देख रहा था।

अपंग या निस्सहाय व्यक्ति को देखकर प्रत्येक हृदय में सहज मानवीयता और समवेदना जाग जाती है। चम्पू को लगा वसुन्धरा का अंग-अंग व्यथा से तिरोहित है। उसका हर बेटा किसी न किसी दुःख से पीड़ित है। तब उसे अति मानवता की भावना का चमत्कारिक आभास हुआ।

वह वहाँ से उठा और लोटड़ी[1] उसके समीप लाकर बोला "इसमें पानी है जब इच्छा हो तब पी लेना।

उसने फिर गर्दन हिला दी। इस बार चम्पू ने उसके नेत्रों में लज्जा की रेखाएँ देखीं। उसने देखा कि वह अपरिचित गूँगी युवती हीनता जनित लज्जा के कारण उससे नेत्र नहीं मिला रही है। उसका चेहरा आरक्त हो उठा।

कैसी विचित्र बात है?

कुरूपता अभाव को सहज स्वीकार कर लेती है पर कम अभाव का आभास भी पाकर बावला हो जाता है।

युवती की अनुभूति ऐसी ही थी।

वह मन-ही-मन बकर विधाता को धुत्कार रही थी ऐसा उसके कौर लेने से जान पड़ रहा था। क्योंकि उसका कौर बार-बार मुँह की ओर न जाकर कभी नाक और कभी ठोड़ी से जा टकराता था।

चम्पू उसे देखता रहा। युवती ने खाना समाप्त कर लिया और उसने कर प्रदाक्षन करके संकेत से पूछा "अब?"

चम्पू ने विनीत भाव से कहा "अब तू जहाँ भी जाना चाहती है जा सकती है।

युवती ने हाथ को बायें-बायें हिलाकर पूछा "कहाँ?"

"जहाँ तेरी इच्छा हो।"

उसने उदासी के साथ गर्दन हिला दी मानो वह कह रही है कि उसका इस अखिल विश्व में कोई नहीं है।

"तेरा यहाँ कोई नहीं है?"

उसने गर्दन हिलाकर उत्तर दिया "नहीं।"

"फिर?" चम्पू बोलता-बोलता चुप हो गया। युवती ने व्यग्रता से ऊँचा-नीचा हाथ किया।

---

१ खेतों में पानी रखने का मिट्टी का विशेष बरतन।

चम्पू ने कहा 'ओह, तू चाहती है कि यह सब मैं ही बता दूं।"

उसने गर्दन का इशारा किया "हाँ।"

चम्पू ने कहा "मैं कुछ नहीं कह सकता। मैं स्वयं अभाव हूँ नीच जाति का हूँ—ढोली। गाने-बजानेवाला तुच्छ प्राणी दीन और हीन! मैं तुम्हें कहाँ आश्रय दे सकता हूँ। मैं तो खुद आश्रित हूँ। पर आज रात-भर तू यहीं रह और कल मैं तुझे रामू के पास ले चलूँगा। वह बड़ा दयालु है भक्त है।

उसने हाथ का संकेत किया "यह रामू कौन है?"

"सुनार है, चम्पा का प्रेमी है। चम्पा के लिए उसने सभी सुखों को तिलांजली दे दी है। पर तूने अपना नाम नहीं बताया?

युवती ने एक बार बाँसुरी को अपने अधरों से लगाया और भगवान श्रीकृष्ण की मुद्रा में ज्यों वह—शेष पाँव पर खड़ी हो गई। फिर झुकी और चम्पू के पाँव पकड़ लिए तब विभोर-सी होकर खड़ी हो गई।

चम्पू उत्साह से बोला राधा?"

उसने नकारात्मक गर्दन हिला दी।

'रुक्मिणी?"

"

"फिर?

उसने अपने दोनों हाथों की तमाम अँगुलियाँ दिखाई और फिर हाथ जोड़ दिये।

चम्पू ने मुसकराकर कहा "गोपी?"

वह हँस पड़ी।

गोपी तभी तुझे बाँसुरी बजानी आती है। कृष्ण-भक्ति के बिना यह विरह-दग्ध चिरन्तन स्वर कहाँ? सुनाओ न कोई भजन? मुझे बाँसुरी-वादन से अत्यन्त प्रेम है। कभी-कभी मैं मानजी[1] को गाता हूँ

---

१ राजस्थानी लोक-गीत।

तो वातावरण प्रेममय हो जाता है। हर प्राणी अपने को प्रेममय ही समझने लगता है।

युवती ने बाँसुरी को अपने मृदुल अधरों का चुम्बन दिया और फिर उस पर एक भजन गाने लगी—

ओ अन्तरिक्षवासी अगम देवता ! हमारे अपराधों को क्षमा करना क्योंकि हम प्रत्येक क्षण एक पाप की रचना करते हैं।

'ओ घट-घट के वासी प्रभु ! हम इतने अज्ञानी हैं कि पाप और पुण्य का भेद भी नहीं जानते। सोचते हैं कि हम पुण्य कर रहे हैं और वह पाप हो रहा है।

"ओ दीनबन्धु ! हमें तू अवश्य क्षमा करेगा क्योंकि हम खतावार हैं। तेरी सृष्टि रचना के चाँद-सूरज देव भी निष्कलंक नहीं हैं।

"ओ कृपाल ! यदि तू दया-निधान नहीं होता तो हम सब तेरे अपराधी क्षण भर भी जीवित नहीं रहते।

"ओ भवतारक तारणहार ! हम प्रार्थना करते हैं कि हमें नारकीय यातनाओं से मुक्ति दिला कर मोक्ष प्रदान करना।"

बाँसुरी का स्वर रुका।

वातावरण स्तब्ध ! विरक्ति का साम्राज्य !

चम्पू भावावान् हो उठा। उसने लपककर गोपी के हाथ पकड़ लिए। विह्वल स्वर में बोला "सचमुच तू रागिनी है संगीत है।

युवती के लोचनों में अश्रु की चिनगारियाँ जगी और अकस्मात् वह चञ्चल हो गई। उसके अन्तर की व्यथा सजलता बनकर पलकों के कूलों पर तड़प उठी।

अपनी प्रशंसा सुनकर मनुष्य प्रशंसाकर्ता के प्रति 'धन्यवाद' के दो शब्द बोलता है। उसके अभाव में व्यक्ति को जो यंत्रणा मिलती है उसी यंत्रणा से गोपी अभिभूत हो उठी। उसके तन का तार-तार झनझना उठा।

चम्पू ने उससे क्षमा-याचना की।

संध्या का मटमैला आँचल प्रतीची की ओर उड़ चला था और इसके

प्रतीप प्राची की ओर से अन्धकार का सैलाब बह उठा। देखते-देखते खेतों की बातें अदृश्य हो गईं।

अन्धकार, शून्यता और एक अज्ञात भय छाने लगा।

कभी-कभी शृगाल की अप्रिय आवाज सुनाई पड़ जाती थी जिससे गोपी की आँखों में भय का संचार हो जाता था।

और चम्पू सोच रहा था "यह गूँगी युवती यदि सुन्दर नहीं होती तो इस पर कोई कृपा ही नहीं करता। सहानुभूति के दो शब्द भी इसके प्रति कहने का कोई कष्ट नहीं करता। बेचारी का जीवन भटकनेवाले अँगारे की तरह हर क्षण नवीन पीड़ा को जन्म देनेवाला बन जाता। पर यह है कौन? कहाँ से आई है और क्यों आई है? पढ़ी-लिखी है समझदार है, फिर ? कहीं यह गुप्तचर तो नहीं है? आजकल हर शासक दूसरे शासक को समाप्त करने में लगा है यह गूँगी युवती कदाचित ग्रामों की आन्तरिक स्थिति से अवगत होने के लिये आई हो। मुझे इसे ठाकुर सा के हवाले कर देना चाहिए।" चम्पू काफी देर तक अपने मस्तिष्क को स्वस्थ नहीं कर पाया। मकड़ी के जाले की भाँति एक पर एक विचार बनता गया।

आखिर वह वहाँ से चला। गोपी ने उसका हाथ पकड़ा। चम्पू ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा "मैं कुछ खाने-पीने के लिए ले आऊँ? रामू के घर जा रहा हूँ उसकी माँ भोजन लिए मुझे प्रतीक्षा रही होगी। वह माँ हम सबकी माँ है वसुधा की तरह शांत और सागर की भाँति गंभीर। कोई व्यक्ति कितना ही मातृ प्रेम से वंचित क्यों न हो कितना कुरूप व्याधिग्रस्त दुर्गन्धयुक्त क्यों न हो उसकी ममता से वंचित नहीं हो सकता। वह अत्यन्त ही सरस और विशाल है। तू चलेगी?"

गोपी ने चम्पू का हाथ अपने हाथ में लिया और उसकी हथेली पर अंगुली से लिखा 'कल।"

"बहुत अच्छा।"

चम्पू चला गया।

घर में रामू का पता नहीं था। माँ भोजन लिए हुए बैठी थी और चूल्हे की बुझती आग में कभी-कभी लकड़ी डालकर उसे पुनः प्रज्वलित कर देती थी।

चम्पू के कदमों की आहट सुनते ही उसके कान खड़े हो गये। उसने भीतर से ही कहा, "अब पधार रहे हैं यमराजजी! गायें जब लौट रही थीं तब भाग गए थे। न खाने की चिन्ता और न पहनने की। जब देखो तब गायब! अरे! तू तो चम्पू है। बेटा चम्पू, जरा रामू को ढूँढकर ला। आज मैंने बाजरी का खिचड़ा¹ बनाया है। ठंडा हो रहा है और तू जानता है कि ठंडा होने पर उसका स्वाद ही बिगड़ जायगा।"

चम्पू ने हूँ किया और जिस पाँव आया था उसी पाँव वापस लौट गया।

गाँव का वही मुनहा कुआँ!

अन्धकार, निबिड़ अन्धकार और उस अन्धकार में दो प्राणियों की बातें!

रामू स्नेह-विगलित स्वर में बोला, "राजपूत और सुनार का मिलन अशोभन है। हम जाति-मद की अटूट शृंखलाओं को खंडित नहीं कर सकते पर उस महामिलन की पुनीत परम्परा को यह विश्व-व्यापी शक्तियाँ भी नहीं मिटा सकतीं। यह बन्धन किसी रस्सी और किसी लौह-शृंखला से नहीं बंधा है, यह बंधा है—प्रीत की अदृश्य डोरी से। आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध। हृदय का हृदय से बन्धन!"

"पर दुर्जन कहता था कि इस सुनार के बच्चे को मैं कच्चा ही चबा जाऊँगा" चम्पा ने भयातुर होकर कहा।

"यह नादान है चम्पा! प्राणी प्राणी को नहीं खा सकता। प्राचीन ग्रन्थों में रामायण और महाभारत में जो राक्षसों का वर्णन है, वह उन क्रूर व्यक्तियों का प्रतीक है जिन्होंने मानवता को किसी न किसी रूप

---

१ एक प्रकार का राजस्थानी भोजन।

मैं स्वीकार नहीं किया। जो पराजयता को अपना धर्म और अत्याचार को अपना रक्षा-कवच मानते थे। नर भर का मतलब करें यह प्रतीकात्मक बात है।"

"तो भी मुझे उससे डर लगता है।"

"डर और तुझे! जमना! तू निर्भय है तुझे डर किस बात का? मैं भी तेरे आँचल की ओट पाकर इतना निर्भय हो जाता हूँ जैसे मैं मृत्युञ्जयी हूँ। फिर तुझे कौन मार सकता है?"

"अच्छा अब मैं चली?

"नहीं।

"क्या?"

"मन नहीं भरा।

"हमेशा देखते हो और मन नहीं भरता ऐसा क्यों?

"कामना अधूरी है न!

"कब पूरी होगी?"

"जब तेरी इच्छा होगी?

जमना चुप!

निस्तब्धता!!

रामू का लम्बा निश्वास!!!

जम्पू के पाँवों की आहट।

"कौन है?" रामू ने पूछा।

"मैं हूँ जम्पू।

"मुझे मुक्त कर दो!" जमना ने व्याकुल स्वर में कहा।

"मुक्त कर दूँगा तो और बन्धनमय हो जाओगी।" रामू ने जमना के हाथ को मजबूती से पकड़ते हुए कहा, "राधा और श्रीकृष्ण के प्रति बन्धन से तू परिचित नहीं है। उन दोनों की दूरी ही सामीप्य था। अलगाव ही चिरबन्धन था। इसलिए कहता हूँ कि मुझ से मुक्त होने का प्रयास न करो।"

चमणा कम्पनहीन हो गई। निर्विरोध उसके बन्धन में जकड़ी रही। न बोली और न डोली। बिलकुल मौन।

चम्पू ने लम्बे स्वर में कहा "भक्त-वत्सल राम्! चिर बन्धन और चिर मुक्ति का विश्लेषण युगों से होता आया है और भविष्य में होता रहेगा। अब घर पर जाकर अपनी माँ के हाथ से खाना खाओ।

राम् उठा और चला गया।

चमणा स्तम्भ-सी खड़ी रही।

चम्पू ने दीनता से कहा "धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को बिलकुल भूल जाना मूर्खता है। दुष्ट दुर्जन राजपूत जाति में जो विष वमन कर रहा है वह एक दिन तेरी और राम् की प्रेम-लीला का वृत्तान्त कर देगा। चमणा!" चम्पू ने आर्द्र कंठ से धीरे-धीरे कहा "मैं निम्न जाति का हूँ पर राम् की कृपा और देव-चमत्कार के कारण मैंने आवश्यकता से अधिक पढ़ लिया है, अपने आप पर और व्यवस्था पर जरूरत से अधिक सोच और समझ लिया है। इसलिये कभी-कभी तुम सभी लोगों को उपदेश देने का दुस्साहस कर लेता हूँ। ढोली को ऐसा अपराध नहीं करना चाहिए पर तुम लोगों के अपार अनुराग के कारण मैं ऐसा कर बैठता हूँ अन्यथा दंडित पुरुषोत्तम इतिहास की पुनरावृत्ति कर देता 'शम्बूक वध' ने सुधामयी धरित्री को जिस प्रकार अपवित्र किया था उसी भाँति यह पतित मेरे वध से उसकी वय को रक्त रंजित करा देता। पर प्रभु मुझ पर अत्यन्त दयालु है।" उसने कुछ क्षण मौन रहकर प्रभु की अदृश्यता की ओर फिर बोला "मैं समझता हूँ कि तुम दोनों का प्यार महान है। विषयासक्ति रूपासक्ति वैभवासक्ति सबसे रहित लौकिक वासनाओं से परे तुम दोनों का प्यार है। तुम दोनों में एक आग जो एक दूसरे को जलाना नहीं चाहती वरन् स्वयं की आहुति से अपने प्रियतम को पूर्ण करती है और यह पूर्णता ही इस बात की साक्षी है कि तुम दोनों का प्यार अलौकिक है पर माया! माया सदा ससीम और असीम के बीच अवरोधक बनकर रही है। इसे तोड़ो और तब एकाकार

हो जाओ।"

जम्पू हठात् चला गया।

जमना अवाक्-सी खड़ी रही। यह ढोंगी है या पिछले जन्म का महान् पंडित! जरूर किसी दैवी अभिशाप से यह इस रूप में यहाँ आया है। मैं इसे प्रणाम करती हूँ। उसने मन-ही-मन कहा।

जमना उस अन्धकार में अपने हल्के कदम उठाती हुई डेरे की ओर बढ़ती गई।

• •

यशोदा रामू को देखते ही पत्थर बन गई। जिस मुद्रा में बैठी थी उसे अत्यन्त कठोर कर लिया।

रामू सहमता-सहमता उसके समीप आया और बोला "माँ माँ!" वह बैठ गया।

माँ पूर्ववत् बैठी रही।

"बोलेगी नहीं रूठ गई है माँ! यदि तू ही मुझ से रूठ गई तो कौन मुझे अपने गले से लगायेगा?"

माँ ने अपनी गरदन दूसरी ओर घुमा ली।

"रूठ गई! रूठ जा पर मैं जानता हूँ कि तू मुझ से नहीं रूठ सकती। राम से कौशल्या नहीं रूठ सकती। अपने कान्हा से यशोदा नहीं रूठ सकती। अब भी नहीं बोलेगी? तब मैं चलता हूँ। माँ मेरी माँ मैं चला"

रामू उठा कि यशोदा ने गर्ज कर कहा "अब कहाँ चला यशोदा के कन्हैया? दिन भर के बाद आए हो जरा पेट-पूजा तो कर लो।"

रामू निश्छल और भोली हँसी से खिल उठा।

"माँ! तू कितनी अच्छी और विचित्र है। तेरा गुस्सा बिजली की तरह है। आता है और चला जाता है। ला परोस दे।"

यशोदा ने खाना परोसा। रामू खाने लगा। वह बिलकुल मौन था। अनावश्यक-मौन यशोदा के लिए असह्य हो गया। वह निस्पृह भाव से

बोली, "आजकल तू खोया-खोया क्यों रहता है ?"

रामू मुसकराता हुआ बोला "आजकल मेरे समस्त ज्ञान-तंतु एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हैं।"

"क्या ?

"माँ तू जानती है कि मैं ममता को "

"रामू !" यशोदा की अन्तरात्मा से एक चीख-सी निकली। आँखों की पुतलियों में कड़वा और आकृति पर अवसाद की गहरी रेखायें छा गईं। दबते हुए स्वर में बोली 'यह नाटक समाप्त कर दो मेरे बेटे अन्यथा इस नाटक का अंत 'महाभारत' की तरह दुखान्त होगा। न रहेंगे कौरव और न बचेंगे पाण्डव। न रहेगा रामू और न रहेगी ममता !"

रामू गंभीर हो गया। वह लिहाफ में अपनी सभी अंगुलियों को चाटता हुआ धीमे-धीमे बोला "माँ भगवान कृष्ण के बिना यह चक्र कौन चला सकता है ? चौसठ कलाओं के पारंगत महान् कूटनीतिज्ञ श्रीकृष्ण के बिना इतनी किसमें शक्ति है जो अपराजय भौतिक भ्रम को पराजित कर दे ? और प्रभु कृष्ण कहाँ ?"

'तू मानेगा थोड़े ही !' थोड़ा आक्रोश था माँ के स्वर में।

रामू बिलकुल शांत हो गया "तू माँ निराधार ही नाराज हो जाती है। अच्छा माँ अब मैं ममता से नहीं मिलूँगा।"

माँ प्रफुल्लित हो गई। उसके उन्मन मुख पर उल्लास की ऊर्मियों का निरन्तर नर्तन होने लगा।

"माँ !" बाहर से आवाज आई।

"बप्पू !" यशोदा ने हठात् कहा।

बप्पू रसोई के बाहर बैठ गया।

माँ ने कहा "ले अब तू भी थोड़ा खिचड़ा खा ले। मैंने चोखा बना है, क्यों रे रामू ?"

रामू उपहास भरे स्वर में बोला "भिलनी के बेर की तरह मीठे ही स्वादिष्ट और मधुर "

हो जाओ।"

रम्मू हठात् चला गया।

चमरणा अवाक्-सी खड़ी रही। यह जोगी है या पिछले जन्म का महान् पंडित ! जरूर किसी दैवी अभिशाप से यह इस रूप में यहाँ आया है। मैं इसे प्रणाम करती हूँ। उसने मन-ही-मन कहा।

चमरणा उस अन्धकार में अपने हलके कदम उठाती हुई डेरे की ओर बढ़ती गई।

•

यशोदा रामू को देखते ही पत्थर बन गई। जिस मुद्रा में बैठी थी उसे अत्यन्त कठोर कर लिया।

रामू सहमता-सहमता उसके समीप आया और बोला 'माँ माँ ! वह बैठ गया।

माँ पूर्ववत बैठी रही।

"बोलेगी नहीं रूठ गई है माँ ! यदि तू ही मुझ से रूठ गई तो कौन मुझे अपने गले से लगायेगा ?

माँ ने अपनी गर्दन दूसरी ओर घुमा ली।

'रूठ गई ! रूठ जा पर मैं जानता हूँ कि तू मुझ से नहीं रूठ सकती। राम से कौशल्या नहीं रूठ सकती। अपने कान्हा से यशोदा नहीं रूठ सकती। अब भी नहीं बोलेगी ? तब मैं चलता हूँ। माँ मेरी माँ मैं चला "

रामू उठा कि यशोदा ने गर्जकर कहा 'अब कहाँ चला यशोदा के कन्हैया ? दिन भर के बाद आए हो जरा पेट-पूजा तो कर लो।

राम निश्छल और भोली हँसी से खिल उठा।

"माँ ! तू कितनी अच्छी और विचित्र है। तेरा गुस्सा बिजली की तरह है। आता है और चला जाता है। ला परोस दे।"

यशोदा ने खाना परोसा। रामू खाने लगा। वह बिलकुल मौन था। अनायास-मौन यशोदा के लिए असह्य हो गया। वह निस्पृह भाव से

बोली, 'आजकल तू खोया-खोया क्यों रहता है ?

रामू मुसकराता हुआ बोला "आजकल मेरे समस्त ज्ञान-तंतु एक ही केन्द्र पर केन्द्रित हैं।

"क्या ?

"माँ तू जानती है कि मैं वनजा को ..."

"रामू ! यशोदा की अन्तरात्मा से एक चीख-सी निकली। आँखों की पुतलियों में जड़ता और आकृति पर अवसाद की गहरी रेखायें छा गई। दबते हुए स्वर में बोली "यह नाटक समाप्त कर दो मेरे बेटे अन्यथा इस नाटक का अंत 'महाभारत' की तरह दुखान्त होगा। न रहेंगे कौरव और न बचेंगे पाण्डव। न रहेगा रामू और न रहेगी वनजा !"

रामू गंभीर हो गया। वह खिचड़ी में अपनी भरी अंगुलियों को चाटता हुआ धीमे धीमे बोला "माँ भगवान कृष्ण के बिना यह कलह कौन बचा सकता है ? सोलह कलाओं के पारंगत महान् कूटनीतिज्ञ श्रीकृष्ण के बिना इतनी किसमें शक्ति है जो अपराजेय आत्मिक प्रेम को पराजित कर दे ? और अब कृष्ण कहाँ ?"

"तू मानेगा थोड़े ही ! थोड़ा आक्रोश था माँ के स्वर में।

रामू बिलकुल शांत हो गया "तू माँ निराकरण ही नाराज हो जाती है। अच्छा माँ अब मैं वनजा से नहीं मिलूंगा।"

माँ प्रफुल्लित हो गई। उसके उन्मन मुख पर उल्लास की ऊर्मियों का निरन्तर नर्तन होने लगा।

"माँ !" बाहर से आवाज आई।

"श्यामू !" यशोदा ने हठात् कहा।

श्यामू रसोई के बाहर बैठ गया।

माँ ने कहा "ले अब तू भी थोड़ा खिचड़ा खा ले। मीठा बना है क्यों रे रामू ?"

रामू उल्लास भरे स्वर में बोला "शबरी के बेर की तरह खारा ही स्वादिष्ट और मधुर"

"कुत्ते की पूँछ सीधी हो तो तेरा स्वभाव ठीक हो। जग्गू, तू जाकर बता।"

जग्गू रसोई के बाहर बैठ गया। छोटी जात का रसोई में नहीं जा सकता था। वैसे अन्य गाँववाले जग्गू को घर के भीतर कदम भी नहीं रखने देते थे। उनका घर अपवित्र हो जाता था। पर यशोदा यशोदा ठहरी! कहती थी 'जब हमारे राम भिलनी का जूठा बेर खा सकते हैं तब मैं जग्गू को घर में आने से कैसे मना कर सकती हूँ।

माँ ने 'ढाक' के पत्ते पर उसे परोस दिया था। वह खाने लगा। पहला कौर मुँह में डालते ही बोला "वाह, माँ वाह! खिचड़ा क्या बना बस अंगुलियाँ काट खाने को जी चाहता है।" वह क्षण-भर चुप रहकर बोला "माँ थोड़ा-सा खिचड़ा एक पत्ते में दे दे न।"

"क्यों?"

"जरूरत है।"

"अरे भाई, किसके लिए, तेरे कौन घरवाली बैठी है?" रामू बीच में ही बोल उठा।

"माँ, मैं झूठ नहीं बोलता। बात यह है कि एक अनाथिन युवती भाग्य की मारी आ गई है। बेचारी भूखी बैठी है।"

"कहाँ?" विस्मय से पूछा यशोदा ने।

रामू भी जग्गू को मर्मभरी दृष्टि से निहारने लगा जैसे उसकी मुसकराती हुई आँखें कह रही हों—'वाह बेटे यह काम तू कब से करने लगा? तू भीष्म पितामह ठहरा बाल ब्रह्मचारी! फिर यह ?"

"अपने खेत में।"

"रात भर वहीं रहेगी।"

"इसमें हर्ज ही क्या है?" वह व्यंग्यात्मक स्वर में बोला "अब वह युग चला गया, माँ कि हनुमान की स्वेद-बूँद सागर में गिरी कि मकरध्वज उत्पन्न हो गया।"

जग्गू को रामू का यह परिहास उचित नहीं लगा। सहिष्णुता की

परिधि में रहता हुआ बोला, "माँ! रामू राम है, मर्यादा पुरुषोत्तम, दोष रहित! और मैं ठहरा डोमी!"

"ऐसा क्यों कहते हो? तू रामू से किस बात में कम है? नीच जाति में उत्पन्न होना ही कोई ऐसा अपराध नहीं है कि तू स्वयं आपको छोटा समझने लगे। मैं कहती हूँ कि तू रामू से श्रेष्ठ है।"

"नहीं माँ! रामू सर्वश्रेष्ठ है और मैं हूँ डोमी, आपको प्रसन्नता और उन्माद में अपने गुरु को दुखित बनाकर नचानेवाला कीट, तुच्छ, क्षुद्र!"

"तू नाराज हो गया चम्पू?"

"नहीं रामू, नाराज भला वह व्यक्ति क्या हो सकता है जिसे सामाजिक प्रतिष्ठा इतनी भी प्राप्त नहीं है कि उसकी नाराजगी से एक भी हृदय में तनिक भी कष्ट हो। उस व्यक्ति के संताप पर समाज हँसकर कहेगा कि अरे देखो न भाई, यह आ रहे ठाकुर सा के कँवर, इसे 'तू' न कहना नहीं तो यह नाराज हो जायेंगे। अब तू ही बता न रामू, ऐसी स्थिति में मैं ऐसी भूल क्यों करूँ?" रामू उस प्रसंग को बिलकुल बदलता हुआ बोला, "माँ! खिचड़ी दर्री व पत्ते में डाल दे।"

"मैंने पत्तों में बाँध भी दिया है।"

"मा, मैं जाता, बेचारी गोरी अकेली होगी।" चम्पू ने कहा।

वह जाने लगा। माँ ने स्नेह-भरे स्वर में कहा, "चम्पू, खटिया तो ले जा।"

"नहीं माँ, मैं धरती पर ही सो जाऊँगा।"

रामू इतनी देर से चुप था। अब उसे भी अपनी भूल सुधारने का अवसर मिला। अनुराग के साथ बोला, "धरती पर सो जाओगे भले मानस! धरती पर किसी कीड़े-कांटे ने काट लिया तो?"

"तो मैं स्वतंत्र हो जाऊँगा।"

"चुप!" रामू चम्पू के समीप आ गया। चम्पू के कन्धे को हुए कहा, "मैं कल खाट लाऊँगा।"

"ठाकुर मामा, गोपी वास्तव में वृन्दावन की गोपी ही है।"

रामू मुसकरा पड़ा।

चम्पू चला गया।

• •

गोपी अन्धकार में अकेली बैठी थी। चम्पू ने वहीं छोटा पलीता जलाया। प्रकाश में चम्पू ने देखा कि गोपी के चेहरे पर अपूर्व शांति है। एकान्त में मानव-हृदय में जो भय उत्पन्न होता है, गोपी उस भय से सर्वथा मुक्त थी। उसे गोपी के इस साहस पर विस्मय हुआ। वह बोला "तुझे भय नहीं लगा?

उसने गर्दन हिलाकर न कर दी।

"बड़ी साहसी है!

उसकी बड़ी बड़ी आँखों में गौरव दीप्त हो उठा। उसकी नस भी फूल आई।

"ले अब खाना खा ले।

गोपी मचान के नीचे पालथी मारकर बैठ गई।

चम्पू ने भोजन उसके सम्मुख रखते हुए कहा "ऐसा स्वादिष्ट भोजन तू ने अपने जीवन में भी नहीं खाया होगा।

"नहीं ऐसा नहीं खाया इससे अच्छा खाया है।" उसने धरती पर लिखा। चम्पू की आँखों में उपेक्षा तैर उठी। व्यंग्य भरे स्वर में बोला "तब तू भी किसी ठाकुर की कुँवरानी हो!"

"नहीं मैं तो सिर्फ गूंगी हूँ"

"गूंगी!" एक धक्का-सा लगा चम्पू के मन पर। खिन्न स्वर में बोला "तू गूंगी है? नहीं तेरी जीभ किसी ने काट ली है। जरूर तू कठोरहृदया रही होगी क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि रूपवती सुन्दरियाँ स्वभावतः अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पाषाणी और कठोर होती हैं। मैंने एक कहानी सुनी थी कि मिस्र की एक साम्राज्ञी जितनी सुन्दर थी उतनी ही दुष्ट थी। जनपुर के महाराजा कुबेरसिंह की पत्नी

ने सौन्दर्य के घमण्ड में आकर अपने महान्ध पति की आज्ञानुसार अपने सौतेले पुत्र को मृत्यु-दंड दे दिया? यह सब स्वाभाविक है।" उसकी दृष्टि अधीरतापूर्वक गोपी की उन पतली-पतली अंगुलियों पर जम गई। प्रथम बार चम्पू को प्रतीत हुआ कि आगन्तुक युवती अनिंद्य सुन्दरी है। उसकी अंगुलियाँ गुलाब के फूल की भाँति कोमल और दृष्टि-प्रिय हैं। तब उसने सौन्दर्य-अभिभूत व्यक्ति की तरह गोपी के अंग-प्रत्यंग को देखा। देखकर मंत्र-मुग्ध हो गया।

उसने हाथ का संकेत किया।

"तू पूछ रही है कि मैं क्या सोच रहा हूँ। पगली!" वह आत्मीयता में डूब गया "मैं सोच रहा हूँ कि तेरा यह ग्रामीण युवती वाला शाश्वत सौन्दर्य सम्पत्ति की सौम्यता सज्जित है। अवश्य तू कभी किसी राजा की विशेष बाँदी रही होगी।"

गोपी के नेत्रों से चिनगारियाँ-सी चमकीं जैसे चम्पू के इस कथन से उसका अपमान हुआ है।

चम्पू ने उस अनंत अन्धकार में अपनी दृष्टि फैलाते हुए कहा "मैं जानता हूँ कि बाँदी शब्द ने तेरे हृदय में अपमान के अंगारे सुलगा दिए हैं पर ज्ञान की घोषणा है कि सौन्दर्य सम्पत्ति का सम्बल पाकर दुष्ट बन जाता है। उसमें साधारण शिष्टता शील और सौजन्यता लुप्त हो जाती है और उसकी जगह एक विचित्र-सा चिड़चिड़ापन और कठोरता आ जाती है। यदि सत्ता सौन्दर्य की भक्त बन जाय तो सौन्दर्य हत्यारा बन जाता है। सिंहगढ़ की राजकुमारी की कहानी कभी बचपन में सुनी होगी। राजकुमारी अनिंद्य सुन्दरी थी। दूर-दूर से चाँद और सूरज से राजकुमार उससे विवाह करने आते थे। वह उनके समक्ष तीन प्रश्न रखा करती थी। इन तीनों प्रश्नों की पूर्ति मानवी-शक्ति के बाहर थी। कदाचित् वे प्रश्न कपोल-कल्पित भी हो सकते हैं क्योंकि उनकी यथार्थता का कुछ पता ही नहीं था। बेचारे रूप-आसक्ति के छलाव से राजकुमा[र] मृगतृष्णा की टोह में भटकनेवाले हिरन की तरह आ-आकर

जीवन का अन्त कर लेते थे। जब राजकुमारी को राजकुमार की मृत्यु का समाचार मिलता तब वह वीभत्स अट्टहास किया करती थी। इस मनोवृत्ति को तू साधारण नारी की मनोवृत्ति नहीं कह सकती। उसे दूसरे की मृत्यु से महान सुख प्राप्त होता था। एक तृप्ति और तुष्टि का भाव मिलता था। ऐसा क्यों?

गोपी ने भयातुर दृष्टि से अम्बू की ओर देखा। वह भावावेश-सा हुआ, "इसलिए आदि-काल से मानव सन्तति में पशुता के अंकुर रहे हैं। ये अंकुर जब अधिक मात्रा में हमारे रक्त में बढ़ जाते हैं तब ये नृशंसात्मक प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं। फिर जन्म के साथ ये अंकुर पनपते हैं और अनुकूल परिस्थिति पाकर वे मानवीय संस्कारों पर दानवीय कुसंस्कारों का राज्य स्थापित कर देते हैं। पर ये अंकुर कभी-कभी इस प्रकार हमारी अन्तरात्मा से निकल जाते हैं जैसे कटोरे का पानी। कटोरा जैसे ही उल्टा हुआ वैसे ही वह पानी से या उसमें डाली वस्तु से एकदम खाली हो जाता है ठीक उसी प्रकार वे पाशविक वृत्तियाँ किसी समय पर दुर्घटनावश हमारे मस्तिष्क से निकलकर हमें संत की भाँति निर्मल और पवित्र कर देती हैं। संस्कृति के महाकवि वाल्मीकी का हृदय-परिवर्तन भी ऐसे ही हुआ था। मूर्खता, जड़ता और पशुता का समाप्ति के पश्चात् उसमें प्रज्ञा का जो प्रसार अत्यन्त उदित हुआ था उसने 'राम' के रूप में महान् मानवता का रूप खड़ा कर दिया। गोपी! तू रूपवती थी और जिह्वा का निर्ममतापूर्वक काटा जाना इस बात का द्योतक है कि वर्तमान को देखते हुए तू अवश्य किसी महा अपराध में सम्मिलित थी।"

गोपी ने भोजन करना बीच में ही बन्द कर दिया। वह हाथ धोकर मचान पर सो गई।

"तू नाराज़ हो गई!" अम्बू ने उसके कुन्तलों को सहलाकर कहा। वह मचान पर विस्तृत कोमल घास में मुँह छिपाकर सिसक-सिसककर रोने लगी। वह भी भारीकंठ से बोला "तू रोती है! सचमुच मुझे लोग क्यों कल्पनामय कहते हैं? देखो न भावुकतावश मैंने तुम्हें कितनी मार्मिक

पीड़ा पहुँचाई है ? व्यर्थ ही तुम पर दोषारोपण करने लगा। तेरे जीवन के सत्य से अभिज्ञ मैं न जाने क्यों इतनी भटकसवालियाँ लगा बैठा ? वास्तव में मैं विवेक-शून्य हूँ। गोरी ! मैं दोषी हूँ अकृत मूढ़ ! विवा व्यथम मेरा कतव्य नहीं है इसलिए मैं सदा ज्ञान के नाम पर कटुता का प्रचार कर बैठता हूँ। लोग मुझे स्नेह दान की जगह वैमनस्य-दान दे जाते हैं। क्यों ? केवल इसलिए कि मूढ़ को उपदेशक नहीं बनना चाहिए मुझे क्षमा कर दो गोरी मैं तेरा अपराधी हूँ।

गोरी हठात् बैठ गई।

पलीता अब बुझने को था। उसके मंद आलोक में चम्पू ने देखा कि गोरी के मन पर एक अलौकिक निर्माल्य है। वह अलौकिक दामन उसकी निर्दोषता का प्रमाण है।

"गोरी ! मनुष्य में ज्ञान को गुप्त रखने की क्षमता नहीं है। वह तनिक भी योग्यता को सुन्दर आडम्बरों से सजाकर प्रस्तुत करता है। बस आडम्बरों के चक्कर में कभी-कभी यह प्रमाप भी कर बैठता है।" वह नितान्त मग्न होता हुआ बोला "मेरा हृदय कहता है कि तू अच्छी है। ये जीवन कभी-न-कभी प्रकृति के प्रकोप से कटी है।"

गोरी ने एक बार उसे विषादत दृष्टि से देखा और फिर अपनी बाँहों को मुंह के दोनों ओर लपेटकर सो गई।

चम्पू धरती शैया पर अवसन्न होकर पड़ गया।

• • •

प्रातः सर्मानिल की शीतल लहरें। पक्षियों का कर्ण-प्रिय कलरव। खेतों की बालों का अद्भुत नृत्य ! राजू का स्वर, मधुर और प्रिय स्वर—

'जाग रे,
ओ मरुभूमि का देवता
जाग रे !

अनवधानित किसी अवरोध से स्वप्न बीच में ही भंग हो गया हो

ऐसे चौंक कर जाग क्या चम्पू ।

पलकें उसकी भारी थीं । ऐसा लगता था कि रात्रि के मुग्ध प्रहरों में भी वह चैन से नहीं सो पाया है । वह उठ बैठा । उसने अपने शरीर को देखा । मिट्टी से वह सुगन्धित हो गया था । उसने मुट्ठी भरकर मिट्टी को सूंघा और भावुकता से कहा "माँ का आँचल सदा सौरभमय होता है ।

तब उसकी दृष्टि गोपी पर पड़ी । निद्रा की सुख-गोद में वह निस्पन्द सी पड़ी थी । चम्पू ने उसके मुख को देखा—सूरज की तरह सुचिता उस पर दीप्त थी । यश का अम्लान उसके सौन्दर्य-युक्त कपोलों पर बहुरा रहा था ।

वह उठा चला और उसके समीप आकर अतृप्त भिखारी की भाँति उसे देखता रहा । देखता देखता बड़बड़ाया तृष्णा ही पारस्परिक सम्बन्धों की जड़ है ।"

गोपी ! उसने धीरे से पुकारा ।

स्पर्श आश्चर्य और स्तब्धता !

"चुप हो जाओ चम्पू, पुण्डरीक सोया हुआ है । सूरज की पावन किरणों का स्पर्श ही इसे विकसित करेगा । रामू ने पीछे से नाटकीयता से आगे आकर कहा ।

चम्पू के मन पर धैर्य आ गया । वह कोमल स्वर में बोला "यह है वह युवती !

"सचमुच सौन्दर्य की देवी है । चम्पू ! यदि यह हमारे गाँव में रही तो मैं इसकी अर्चना करूँगा ।"

"और चम्पा ?"

वह तरल-भरी हँसी हँसा "वह महापुंज है और यह उसकी विकीर्ण ज्योति ! अर्चना हर आराध्य की करनी चाहिए पर वन्दना वहीं होना चाहिए, जहाँ से हमें मकरन्द मिलती है ।"

"मैं इसे उठाता हूँ ।"

"क्यों ?"

"धूप चढ़ रही है।"

"चढ़ने दो।"

"ऐसा लगता है कि रात को यह सो नहीं सकी थी।"

"नई बरती है न, पहले-पहल अणखावणी¹ हो सकती है।"

"फिर ?"

"जरा सोयी रहने दो।"

"तेरी इच्छा।"

"तू मेरे संग चल।"

"क्यों ?"

"इसके लिए हाट से ला, सवेरे-सवेरे उसका आतिथ्य क्या करेगा ?

बस !

वे दोनों चल गये।

तभी पूरन आ गया।

रूप के दीप को देखकर पतंग की तरह वह चारों ओर मँडराने लगा।

और सोच रहा था, तभी बप्पू रात को इस घनघोर वन में सोता है। नीच कमीना दुराचारी ! ऐसी सुन्दर युवती का उपभोग ! ढोली होकर इतना दुस्साहस ? साले को मूली की तरह काट फेंकूँगा। पर यह है कौन ? कोई भी हो, यह हमारे ही राजमें में आनी चाहिए, राजपूत के होते हुए ऐसी सुन्दरियाँ ढोली चमारों के यहाँ रहीं तो हमें धिक्कार है। पूर्णता और सुन्दरता सभी बहनें हैं। फिर यह पक्षपात कैसा ? चलो मेरे दुर्मन अपहरण ही कर लो।"

वह नारी के समीप आया।

चिंघाड़ कर बोला, "ए, उठ !"

---

१ अजीब-सी।

गोपी की उन्मीलित पलकें क्षण भर के लिए खुलीं और फिर बन्द हो गईं।

'राम के शाप के कारण मृत्युलोक का संताप भोगने इस ढोली के पास आ गई है। कोई बात नहीं। इस ढोली के बच्चे और इस सुनार के जाये को यमलोक न पहुँचवा दूं तो मेरा नाम दुर्जनसिंह नहीं।

उसने गोपी को जगाने के लिए लोटकी को सँभाला। लोटकी में एक बूँद भी पानी नहीं था। अतः वह अपने खेत की ओर चला। रामू के खेत से तीसरा खेत दुर्जनसिंह का था। हरा-भरा और झूमता हुआ।

सारे गाँव का अनुमान था कि इस बार सबसे अधिक धान दुर्जन के खेत में ही होगा।

दुर्जन अपने खेत में गया। लोटकी को कंधे से लटकाया। क्योंकि उसका समझना था कि सुन्दर युवती प्रायः अशिष्टता और कठोरता से जल्दी ही नाराज हो जाती है। अतः वह गोपी को बड़े ही प्यार से जगाना चाहता था। प्यार से जगाने के लिए पानी की बूँदें!

तब उसे यह भी ध्यान आया कि उसे तलवार भी लेनी चाहिए। रामू और जम्नू उसके शत्रु हैं। सुन्दर युवती भी तलवार की शान से प्रभावित होगी कदाचित् वह मुझे प्रतापी पुरुष समझे। सोनपुर का राजकुमार वीरसिंह समझे जिसकी वीरता पर मुग्ध होकर सरोवरपुर की राजकुमारी चित्रकुँवर ने उसे अपनी दासी बनाने के लिए अनुरोध किया था। क्योंकि उसने सबके सामने सिंह को मार गिराया था।

उसने तलवार ढूँढनी शुरू की।

क्षीप्रता में मनुष्य की दृष्टि पर आवरण पड़ जाता है। सामने की वस्तु उसे दिखलाई नहीं पड़ती। यह मति-भ्रम की अवस्था में प्राणी खिन्न चंचल और क्रुद्ध होता रहता है। जिस वस्तु को वह खोज रहा है, उसके अभाव में जो पास है, उसे भी नष्ट करने की स्थिति में आ जाता है।

दुर्जन को तलवार नहीं मिल रही थी। यद्यपि तलवार उसके

सामने खड़े खेजड़े की एक डाल से लटक रही थी। वह रह-रहकर जोर से पाँव पटकता था और कह उठता था कि उसके दास जरा भी काम के नहीं हैं। वह सबको कोड़ों से पिटवायगा तीन-तीन दिन तक भोजन नहीं देगा धूप में बार बार कोस तक दौड़ायेगा जीवों की खोपड़ी ठंडी हो जायगी। कभी कोई वस्तु अपने उचित स्थान पर नहीं मिलती।

दुर्जन अपने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर बैठ गया।

पाँच क्षण वह उसी तरह बैठा रहा। फिर उसने धीरे-धीरे अपना मस्तक उठाया। पास में झूलती हुई तलवार उसे अचानक दीख पड़ी। उसके होंठों पर ऐसी मुस्कान दौड़ गई जैसी निराश सैनिक को आशा की किरण जीवन पर दीखती है।

उसने तलवार को कमर पर कसा। मूँछों पर ताव दिया और चला।

धीरी अब भी सोई हुई थी।

धूप की किरणें उसकी अलकों में उलझकर मन को बहुत भा रही थीं। एक पत्ते का टुकड़ा उड़कर उसके गाल पर आकर इस तरह पड़ गया था मानो वह कोई तिल था।

दुर्जन कुछ क्षण तक [illegible] से उसे देखता रहा। फिर उसने झोंपड़ी से पानी लेकर धीरी के मुँह पर छिड़का।

धीरी ने आँखें खोल दी।

दुर्जन निर्लज्जता से हँस पड़ा। ऐसी मुद्रा में खड़ा हुआ जिस मुद्रा में नारद बानर का रूप लेकर स्वयंवर में खड़े थे।

धीरी ने अनिच्छा से मुँह फेर लिया।

"मैं दुर्जनसिंह हूँ रूपपुर का सामन्त।"

धीरी ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह उठकर वन की डालों में गायब हो गई।

दुर्जन उसके पीछे-पीछे चला। धीरी ने पलटकर पाप भरी दृष्टि से उसे देखा। वह सहमकर वहीं खड़ा हो गया।

गोपी निर्ममता से वापस आई। उसने दुर्जन से पानी लेकर हाथ मुँह धोया और फिर उसने अपनी दृष्टि पगडंडी पर फैला दी।

"मैं आपसे एक प्रार्थना करने आया हूँ कि आप कौन हैं? इस ढोली को क्या लगती हैं?"

गोपी उसे अपरिचित समझकर बाँसुरी को अधरों से लगा बैठी और उस पर धुन बजाने लगी।

दुर्जन प्रशंसात्मक स्वर में बोला 'आप संगीत-साम्राज्ञी हैं, आप व्यर्थ में इस शूद्र के यहाँ अपने अमूल्य जीवन का सर्वनाश कर रही हैं। मैं आपको अपनी प्रमुख रखैल बनाऊँगा। स्वर्ण-चाँदी से आपका अंग-अंग सज्जित कर दूँगा।

गोपी ने बाँसुरी मचान पर रखकर दुर्जन के गाल पर चाँटा मार दिया।

दुर्जन को प्रभात में गंगा-जमुना के दर्शन हो गये। गोपी पुनः मचान पर बैठकर बाँसुरी वादन करने लगी। उसकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था जैसे उसने चाँटा मारकर कोई भी अमानक कार्य नहीं किया है। दुर्जन भी घात होकर गोपी को देखने लगा। व्यथित स्वर में बोला 'आपने मेरे चाँटा मारा कोई बात नहीं। कोमलांगियों के मृदुल करों का प्रसाद भी भाग्यवानों को प्राप्त होता है' पर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस ढोली के साथ सुखी नहीं रह सकती।"

फिर उसने सोचा कि रावण का प्रतिशोध सीता का हरण था और मेरे अपमान का प्रतिशोध—इसका।

उसने अपनी पूरी शक्ति के साथ गोपी का हाथ पकड़ लिया। हाथ पकड़ते ही गोपी ने किसी प्रकार का विरोध और प्रतिरोध नहीं किया अपितु उसने इतने जोर से अट्टहास किया कि दुर्जन काँप उठा। उसने अपना हाथ ढीला कर दिया और विमूढ़-सा उसे देखने लगा।

दुर्जन ने आतुरता से पूछा "तू कौन है?"

गोपी ने अपने हाथ को इस तरह झटका जैसे वह कह रही हो कि

तू यहाँ से हट जा भाग जा ।

दुर्जन ने तब मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि आज ही रात वह इसको

वह चला गया ।

चम्पू के पाँवों की उड़ती धूल ने गोपी को आमन्त्रित कर दिया वह अपनी बाँसुरी पर मादक स्वर छेड़ बैठी ।

मगर, प्रीतभरा शाश्वत !

चम्पू ने आते ही कहा "लो छाछ पी लो ।"

वातावरण शून्य ! चुप ! गूँगा !

रामू के हृदय पर गोपी गूँगी है—जानकर सहसा आघात लगा । वह चम्पू के समक्ष नैन मूँदकर इस तरह बैठ गया जैसे वह किसी मानसिक रोग से पीड़ित है और बिलकुल थक चुका है ।

अपराह्न की धूप ! वृक्षों की छाँह !

लू के झोंके ! युगल मित्र तन्मय और खिन्न !

रामू ने अधीरता से कहा "आप आप आप मैं कहता हूँ कि प्रभु का अभिशाप इस तरह की नादान और सुन्दर युवतियों पर क्यों टूटता है ?"

चम्पू ने धरती के कंकड़ को उठाकर उसे ज़ोर से फेंका "मुझे ऐसा सन्देह है कि यह युवती अवश्य ही गुप्तचर है । तू नहीं जानता कि राजा दिमाग की राज्य लिप्सा दिन-रात की तरह शाश्वत हो रही है । वह चाहता है कि मैं आर्यावर्त का एकाधिकारी सम्राट बन जाऊँ ? और यही कारण है कि उसने सभी छोटी-बड़ी शक्तियों की आन्तरिक दशा को जानने के लिए इतने दयनीय गुप्तचर रख छोड़े हैं जो नागरिकों की सहानुभूति स्वतः ही प्राप्त कर लेते हैं । लोग उनकी दुर्दशा पर पिघलकर आश्रय देते हैं और बाद में वे सही स्थिति का अवलोकन करके चुपचाप खिसक जाते हैं ।"

"पर इसके मुख का भोलापन इसकी अन्तर्बाह्य शून्यता का तनिक भी साक्षी नहीं है । मैं समझता हूँ कि विशेष ज्ञान की उपलब्धि ने तुम्हें मतिभ्रम कर दिया है ।

"मैं ऐसा नहीं समझता अपितु मेरा विश्वास है कि तू पथ-विस्मृत हो रहा है। सर्वप्रथम रूप के प्रति तुममें जो मोहाकर्षण उत्पन्न हुआ था उसे अब अभावग्रस्त देखकर तेरे मस्तर की समस्त दया-भावना एक साथ गोरी के प्रति जाग उठी है। मनुष्य पहले जितना चंचल और भावुक होता है बाद में उतना ही जड़ और विरक्त होता है।

रामू के व्यथित मन को इस उत्तर से संतोष नहीं मिला। उसे ऐसा लगा कि चम्पू गोपी के गूँगेपन के प्रति अन्याय कर रहा है। वह सफल राजनीतिज्ञ की भाँति जो प्रत्येक की करुणा दया हँसी अश्रु, प्रेम और अनुराग में राजनीति की कुटिल भंगिमाओं और गतिविधियों के दर्शन करता है वा व्यवहार उसके प्रति करने लगा है।

वह बोला "मैं ऐसा नहीं समझता। गोरी साधारण निराश्रयी युवती है। दुर्भाग्यवश वह हमारे पास आ गई है। हमें उसकी सहायता करनी चाहिए।"

पर चम्पू ने दूसरी तरह से कहा "सहायता शत्रु की भी करनी चाहिए, यदि वह असहाय बनकर दीन-हीन दशा में हमारी शरण में आ जाता है तो लेकिन यह मैं निर्विवाद रूप से कह सकता हूँ कि गोपी के पीछे जरूर कोई दुर्घटना-भरा इतिहास भरा है।

"मैं यह नहीं मानता। मैंने अम्मा से कह दिया है कि वह गोरी की सगी बहन की तरह सेवा करे। वह बड़ी दयनीय है कृपा की पात्र है स्नेह की भूखी है।"

चम्पू ने उठते हुए कहा "मैं फिर कहता हूँ कि उसे खेत में ही रखो, ठाकुर सा का गृह-प्रवेश उचित नहीं रहेगा।"

"उसकी इच्छा है कि तू सदा उसे शहनाई सुनाया कर मैं भी एक मित्र के नाते तुमसे अनुरोध करूँगा कि तू असमञ्जस में न पड़कर उसे बस शहनाई सुना दिया कर।

५

दूसरे दिन ही टिड्डी दल ने गाँव पर आक्रमण कर दिया। गाँव के दरिद्र और परिश्रमी किसान मूर्तीव की भाँति निश्चल खड़े रहे। बाजुओं में प्रचण्ड शक्ति होते हुए भी वे अपने खेतों को टिड्डियों के भयानक आक्रमण से नहीं बचा सके। जानी थी समस्त कृषक लाचार हैं और उनके खेत उनकी फसलें जिन्हें देख कभी क्रूर प्रकृति सौन्दर्य प्रगट कर रही है नष्ट कर रही है।

तब कर्षित धरा वन्ध्या की तरह सूना दीखने लगी।

समस्त कृषकों ने अपनी अश्रु-प्लावित आँखों से अपने श्रम के फल रूप शिशुओं को देखा जो छोटे-छोटे कीड़ों द्वारा निगल लिये गये थे।

भाग्य या दैवी लीला समझिये कि दुर्जन के खेत का तीन चौथाई हिस्सा ज्यों का त्यों बच गया। टिड्डियाँ जिस दिशा से आती थीं उस दिशा के एक कोने में दुर्जन का हिस्सा पड़ता था वह अछूता-सा रह गया। शेष सारा गाँव वीरान लगा और सिसकता नजर पड़ता था।

रामू और चम्पू बजड़ पर बैठे हुए अपने दुर्भाग्य को देख रहे थे। ठूंठ, घास और बंजर भूमि।

"अब क्या होगा ?"

"सारा गाँव भूख की आग में जल जायेगा।" चम्पू ने कर्कश स्वर में कहा "और देखो सदा पाप के आवर्त में रहनेवाला दुर्जन इस कोप से बच गया। वाह रे प्रभु !"

"मैं समझता हूँ कि ठाकुर सा महाराजा रिसालू से सहायता लेंगे अन्यथा इनकी प्रजा अन्न के अभाव में तड़प-तड़पकर मर जायगी।"

"उस एक नयनवाले दुष्ट को तो सार्वभौमिकता की क्षुधा इतनी तीव्रता से लगी है कि उसे इस साधारण क्षुधा का परिज्ञान भी उस रिसालू से होना दुष्कर है।"

"फिर ?"

"ठाकुर सा दुर्जनसिंह के खेत का समस्त अन्न स्वाधिकार में लेंगे। उस अन्न से गाँव कुछ माह तक सरलता से निर्वाह कर सकता है और कुछ माह का अन्न पड़ोसी गाँववाले दे देंगे। फिर नई ऋतु आ जाएगी।"

"यह संभव है ?"

तभी ठाकुर और दुर्जन साथ-साथ आते दीख पड़े।

रामू और चम्पू भी ठाकुर के समीप गये।

"खम्मा अन्नदाता की।"

ठाकुर ने गहरी निराशा से कहा "दुर्जनसिंह अपने खेत का अन्न धन के परिवर्तन में देना चाहता है। उसका कहना है कि पाप की लंका में भक्त विभीषण का घर जो बच रहा है वह उसके अगाध पुण्य का प्रताप है। मैं उसका मूल्य चाहता हूँ—सोना और चाँदी।"

"क्या दुर्जन इसके लिये तैयार है कि वह अपने खेत का समस्त अन्न स्वर्ण के परिवर्तन में दे देगा ?" रामू ने विनीत भाव से कहा। उसके चेहरे पर कठोरता थी।

"हाँ" दुर्जन गंभीरता से बोला।

"ठाकुर सा ! हम सहाय और मंगल की चूड़ियों तक आपकी देन आप सेठ का समस्त धन दुगन दे दें।"

शम्भू चुप था।

उसको किसी भी ज्ञान भरी बात पर ठाकुर सा के क्रुद्ध होने की आशंका थी। उसकी आँखों में घृणा और द्वेष अंगारे की भाँति दीप्त हो रहा था।

कुछ क्षण निस्तब्धता रही।

दुर्जन अप्रत्याशित हड़बड़ाकर बोला "मैं अपना सारा धन नहीं दे सकता। मैं समझ गया कि तुम लोग क्या चाहते हो ? तुम चाहते हो कि मैं सारा धन देकर कंगाल हो जाऊँ और फिर धनराशि के कठोर ढेर के समय भूख से बिलबिलाकर तड़पूँ चीखूँ और विक्षिप्त होकर भूल भूल कर चिल्लाऊँ ! और तुम सब मेरी दीन दशा पर घृणा-भरा अट्टहास करो ठहाका और कहो कि लो कुबेर के सुपुत्र सोना खाओ मोतियों को चबाओ ! नहीं मैं सारा धन तुम लोगों को नहीं दूँगा।" वह बार-बार भावी यंत्रणा की कल्पना मात्र से चीख रहा था "मैं तुम लोगों को सारा धन नहीं दूँगा। क्या मैं बुद्धू हूँ या नादान जिसे तुम लोग अतीव धन के प्रलोभन में लूटकर मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाओ। मैं तुम लोगों को सारा धन नहीं दूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम सभी मुझसे घृणा करते हो क्योंकि मैं ठाकुर का सर्वश्रेष्ठ सामन्त और सम्मान प्राप्त व्यक्ति हूँ। ओ मोती ! तू क्यों हँस रहा है ? जा यहाँ से भाग जा हमारे बालकों के ब्याह में नाचने-गाने आना।" और वह पागल की भाँति बार-बार यही वाक्य दोहरा रहा था—"मैं तुम लोगों को सारा धन नहीं दूँगा।"

ठाकुर को उसकी इस विक्षिप्त दशा पर दया आ गई। उन्होंने उसे धैर्य दिया 'तुम जानते हो कि हम अन्याय का अवलम्ब लेकर कोई भी कार्य नहीं करेंगे। तुम जितना धन देना चाहो उतना सहर्ष दे सकते हो। हम इस कार्य में शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे।"

इस आश्वासन से भी दुर्जन को धैर्य नहीं मिला। वह हिंस्र दृष्टि से रामू और चम्पू को देख रहा था।

चम्पू उसकी ऐसी विचित्र मुद्रा देखकर मुसकरा पड़ा। उसका मुसकराना आग में घी का काम कर गया। वह भड़क उठा "तू हँसता है, निर्लज्ज कहीं के! मैं कहता हूँ, अन्नदाता कि मैं अपने खेत का एक दाना भी नहीं दूँगा। चाहे यह गाँव भूख की पीड़ा से बिलख-बिलखकर मर जाय मुझे इससे कोई सहानुभूति नहीं। ये दुष्ट और मेरे घातक हैं। मैं जानता हूँ कि यह रामू मुझे मारकर आपकी सारे राजपूतों की नाक काटना चाहता है पर मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं इन सभी को भूखों मारूँगा। ओह! तब मुझे कितना आनन्द प्राप्त होगा जब मैं अपने चिर प्रतिद्वन्द्वी की लाश और पत्ते खा-खाकर तड़पते देखूँगा। भूख से जब इनकी अंतड़ियाँ इसे कचोटेंगी तब मुझे अपनी सफलता पर गौरव होगा। मैं सभी गाँववालों से अपना प्रतिशोध लूँगा।"

चम्पू के लिए अब मौन रहना अति दूभर हो गया था। वह ताड़ना-भरे स्वर में बोला "इतनी शक्ति यदि एक व्यक्ति में आ जाती तो वह पृथ्वी के सारे फूल और गगन के सारे तारे तोड़कर सृष्टि को कुरूप और प्रकृति को विद्रूप बना देता!

"चुप रह धोबी के बच्चे! नहीं तो गर्दन धड़ से अलग कर दूँगा।"

ठाकुर चोर भी नाटक के दर्शक की भाँति चित्रलिखित-से खड़े थे सभी दृश्य देख रहे थे।

अन्त में वे सभी को शांत करते हुए बोले "खेत दुर्जनसिंह का अपना है। उसकी इच्छा के विरुद्ध हम एक दाना भी नहीं ले सकते।"

"क्यों नहीं ले सकते?" रामू ने दृढ़ता से कहा "आपत्ति काल में प्रजा की सुरक्षा के लिए अन्नदाता को विशेष शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। व्यक्ति के महत्त्व को मिटाकर समष्टि के हित में सोचना चाहिए।"

"हम विवश हैं रामू! न्याय के विरुद्ध हम नहीं जा सकते।"

कहकर ठाकुर डेरे की ओर चले गये।

रात्रि का तिमिरांचल अभी सृष्टि पर विस्तृत नहीं हो पाया था। उसमें तारों के फूल सजाये ही नहीं गये थे, उसमें आकाश-गंगा की बेल चमकाई ही नहीं गई थी कि सारे गाँव में इस दुःखद निर्णय की सूचना पहुँच गई। सारा गाँव निर्जीव हो गया। वे सभी उसे दैवी-कोप समझ रहे थे और एक भयानक कल्पना कर रहे थे। उस भयानक कल्पना के दैत्य की भाँति विकराल दंष्ट्र थे और सिंह जैसे क्रूर और निर्मम पंजे थे।

धरती के अंक में केवल प्रेम की ज्योति निर्माण करनेवाला रामू भी इस आपत्ति में मीत को भूल बैठा। सुख का प्रमंजन बनता के अमर मनुष्य के अभ्यागत को अपनी विस्मृत कार्य से सोचने लगा। वह आकुल-सी रामू के पास दौड़ी-दौड़ी आई, "अब क्या होगा?"

"जो हमारे भाग्य में लिखा होगा।"

"समझी!" वह स्थिर हो गई। उसकी समुद्र-सी नीली आँखों में रोष की दीप्त चिनगारियाँ चमक उठीं। उसके होठों पर अपमान-जनित कम्पन थिरक उठा—"मैं सब समझती हूँ, तू मुझे पराई समझने लगा। जैसे मैं तुम लोगों की पीर में सम्मिलित नहीं हो सकती। जैसे मैं इतनी पाषाणी हूँ कि मेरे हृदय में ममता ही स्वार्थ है, गाँव का स्नेह नहीं! जैसे मैं इतनी दुर्बल हूँ कि मैं अन्याय का सामना नहीं कर सकूँगी। धिक् है मुझे रामू! मुझे विश्वास है और आस्था भी कि मेरा विश्वास मुझ तेरे पीछे है। यह गढ़, यह ठाकुर, यह वैभव मुझे ऐसे लगते हैं जैसे वे मेरे पर विद्रूप की हँसी हँसकर कह रहे हैं कि सब मिथ्या है, नश्वर है, भ्रम है। सत्य है तो केवल नर, नारी उनकी मानवीयता, कोमलता, आतुरता और प्रेम अर्थात् तू! तू मेरे जीवन का सत्य है और तू ही उसी सत्य की कसौटी है। मैं तेरे संकेत पर सर्वस्व विसर्जन कर सकती हूँ, महा परिवर्तन कर सकती हूँ, विद्रोह का भीम गर्जन कर सकती हूँ क्योंकि मैं अनुभव करती हूँ कि तू है तो सर्वस्व

रामू के मन में प्रेम का भीषण ज्वार फूट पड़ा। उसने चनणा को प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर लिया। विह्वलता से बोला "तू मेरी शक्ति और भक्ति है। मैं तेरे बिना निष्प्राण हो जाता हूं।"

उसी समय चम्पू आ गया था।

चनणा और रामू उसी मुद्रा में रहे जैसे मन्दिर की मिष्माण मूर्ति जिसके आगे कितने ही दर्शनाभिलाषी चढ़ रहते हैं और वह सदा एक-सी रहती है।

"सभी ग्रामीण शिव मंदिर के समक्ष उपस्थित हो गये हैं।"

"ठाकुर सा आ गये ?" रामू ने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"उनका मन आज अच्छा नहीं है।"

"ऐसा चनणा यह है तुच्छ मानव की प्रकृति! उन्होंने कब भूख की पीड़ा को जाना है। सदा इच्छा से अधिक प्राप्त हुआ है। वे क्या जानें हमारी पीर, हमारा अभाव हमारा संकट! चलो चम्पू मैं आया! सुनो तो!"

चम्पू जाता-जाता पुनः रुक गया।

"क्या है ?

गोरी कहां है ?"

"वह भी आ गई है।

"प्रसन्न है न ?"

"नहीं।"

"फिर अवश्य चनणा ने उसे कुछ कहा होगा। दया के पात्र पर प्रायः लोग दया करना भूल जाते हैं। ऐसा वे जानबूझकर नहीं करते अपितु ऐसा करना उनकी स्वाभाविक प्रकृति होती है।"

चनणा साँपिन की तरह फुफकार उठी "मैंने गोरी को कुछ नहीं

कर स्वयं की आत्मा पर आघात करता है। यह नितान्त दयनीय और निकृष्ट है। प्रभु उसे शांत बनाये रखे और उसे प्रसन्नता का चिर वरदान दे। कहकर चनमा अपने डेरे की ओर चली गई।

रामू ने कहा "चलो!" सब रवाना हुए।

शिवलिंग!

उसकी अर्चना और वन्दना!

प्रार्थना और विनती!

प्रजा का समूह!

एक चर्चा एक दृष्टिकोण एक घोष!

"हमें अन्न चाहिए!"

"हमें अन्न चाहिए!!"

हमें अन्न चाहिए!!!

उनके घोष से ऐसा प्रतीत होता था कि इस विपुल भार के अन्तर्हित की दारुण मंत्रणा छिपी है उस मंत्रणा ने आज समस्त समुदाय समवेत होकर सबको एक तार में पिरो दिया है ताकि इसका मंत्रणा-जनित यह जयघोष चिरन्तन और मंगलमय बन जावे।

चन्दू ने कहा "शास्त्र कहते हैं कि यदि तेरे पास दो दाने हैं तो एक दूसरे को खिला और एक स्वयं खा। संग्रह न कर, संग्रह करेगा तो पाप का भागी होगा।"

रामू ने दृष्टिपात किया। चनणा नहीं थी। अप्रत्याशित शोक-मग्नता से भयभीत होकर भाग गई था। शील कोटिमय मर्यादा के अटूट बन्धन तोड़ने के प्रयास में असफल रही। क्षण भर के लिए राम भूल गया था कि उसे क्या करना चाहिए, वह मांगवाओं को कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ था पर वह कुछ और ही सोच रहा था—चनणा के बारे में।

वास्तव में उसकी प्रेम की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि वह बार-बार उसकी पुनीत भावना के प्रवाह में बह जाता था। संघर्ष दुहरे की धुंध में प्रभु की पवित्र ज्योति की तरह बिखरे हुए होता था। तब रामू वास्त-

निरीक्षण करके पाता था कि मानव-जीवन केवल भाव-प्रधान प्रेम ही नहीं, ठोस ऐतिहासिक पक्ष भी है। यह धरा तत्कालीन कई महत्त्वपूर्ण चिर कथित घटनाओं की जननी है। ये घटनायें जीवन में उस पर हितैषी भाग को जन्म देती हैं जो आदमी को कुन्दन बनाकर महामानव बनाती हैं जो व्यक्ति को समष्टि के रूप में खड़ा करके उसके जीवन को सार्थक बना देती है। रामू ऐसी स्थिति में अपने अनुरागपूर्ण हृदय से प्रेम के सभी चिन्हों को अमिट करने का प्रयत्न करते ममता पर शीघ्र ही वह पुन प्रेमाभिभूत हो जाता वह उसकी जन्मजात दुर्बलता थी।

चम्पू ने रामू को सावधान किया।

रामू ने चौंकते हुए कहा "हमारा सौभाग्य है कि हम उपस्थिति में दुर्जन भी है। मैं दुर्जन से हार्दिक प्रार्थना करूँगा कि वह इस सामूहिक विपत्ति में गाँववालों के प्रति आन्तरिक समवेदना रखे और अन्न का बँटवारा कर दे।"

दुर्जन बीच में ही उठकर चिंघाड़ पड़ा "मैं एक दाना भी नहीं दूँगा यह मेरा अन्तिम निर्णय है।"

"हमें एक बार ठाकुर से और प्रार्थना करनी चाहिए।" रामू ने दुर्जन की बात सुनकर कहा।

"ठाकुर मेरे वचनबद्ध हैं। वह मेरी इच्छा के प्रतिकूल कुछ भी नहीं कर सकते।"

चम्पू अपने हृदय के आक्रोश और क्रोध को अधिक देर तक नहीं रोक सका। तन कर बोला "तू प्राणी नहीं दैत्य है। मैं समझता हूँ कि तू भीम का वंशज है जिसे लहू पीने में महान तृप्ति मिलती है।"

"चुप रह ढोली के बच्चे।" काँपता हुआ दुर्जन बोला।

"मैं ढोली अवश्य हूँ—पतित और लघु। पर तू तो विराट वंश का है? युद्ध में सच्चा आर्य-रक्त है? लेकिन तेरे कार्य उस कंस राजा से कम नहीं जिसने अपनी माँ को पछाड़कर मारना चाहा। यह

आसमान अपनी बिजली चमकाकर आकाश में चली गई तो भी कंस ने इसके पूर्व अपने सात भांजों की हत्या की। अत्याचार और अनाचार उसके स्वभाव के अंग बन गये पर परिणाम क्या निकला? विनाश सर्वनाश और मृत्यु! इस के निर्दोष बच्चे भूख से बिलबिलायेंगे चीत्कार और आर्तनाद करेंगे और प्रभु से तेरे सर्वनाश की कामना करेंगे। क्या तू समझता है कि यह सम्मिलित दुष्कामना तुझे शांत और अमर रखेगी? नहीं नहीं! दुर्जन कदापि नहीं! इस पीड़ित आर्त भरे अर्धजल से तेरी रक्षा नहीं होगी इसलिए हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ले और हमें इस विनाश से बचा ले।

लोगों ने देखा—दुर्जनसिंह सांप की तरह फुफकारता अपना फन मारता चला गया है।

रामू ने गर्जकर कहा "अन्नदाता के पास चलें।"

भीड़ उस ओर चल पड़ी।

• •

"यह अन्याय है ठाकुर सा।"

"अन्याय कैसा?"

"इस गांव पर जो विपत्ति आनेवाली है उससे गांव की रक्षा की जाय।"

"मैं विवश हूं।"

रामू का संवेदनशील हृदय तड़प उठा "आप विवश हैं क्यों? आप हमारे प्रभु हैं आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए।"

"मैं अपना सारा अन्न आपको दे सकता हूं। ठाकुर ने दर्द से कहा।

"लेकिन आप दुर्जन से डरते क्यों हैं?"

"मैं उसमें वचनबद्ध हूं।"

रामू ठाकुर सा के अन्तर्मन के रहस्य को जान गया। वह विचारने लगा कि ठाकुर प्रजाजनों को यह बताना चाहता है कि उनके बिना

उनका कोई अस्तित्व नहीं। वह जब चाहे तब उन्हें प्राण और मृत्यु दान दे सकता है। वह पूर्ण शक्ति-सम्पन्न है। अब इसका मान-मर्दन होना अति आवश्यक है।

वह ललकारकर बोला "अन्नदाता! हम लोग शक्ति के स्रोत हैं। शक्ति अर्जन करके अपनी समस्या का समाधान ढूंढ लेंगे। आप चिंता न करें सिंहासन और सम्राट की सृष्टिकर्त्ता यह प्रजा जब भूख और अभाव में संगठित होती है तब गंगा-यमुना अपने वक्ष को चीरकर उन्हें पथ दे देती हैं और हिमालय नत होकर उसकी अभ्यर्थना करता है पर आपकी यह अनिर्णयता आप द्वारा हमारी हत्या है।"

तभी एक किसान दौड़ा-दौड़ा आया और उतावली से बोला "आग भयानक आग विध्वंस।"

सब चौंक पड़े।

लोगों ने देखा—दुर्ग का सारा अन्न अग्नि की भयानक लपटों में भस्मीभूत हो रहा है।

और दुर्ग ?

उस निस्सहाय वधू की तरह चीख-चीखकर रो रहा था जिसके हाथ की मेंहदी का रंग भी फीका नहीं पड़ा हो और उसका पति मर गया हो। उस निर्दयी प्राणी के अन्तस्थल में आज वर्षों के बाद सच्ची समवेदना परिलक्षित हो रही थी। उसके करुण क्रन्दन में उसकी अन्तरात्मा का दुःख था। उफ! मनुष्य जब चोट खाता है तब उसे पराए के दुःख का आभास होता है।

ठाकुर ने उसे सांत्वना दी। पर उसने पागल की तरह उन्मत्त होकर राम का गला पकड़ लिया तू ने मेरे खेत को जलाया तू ने मेरा सर्वनाश किया! ठाकुर सा इसे दंड मिलना चाहिए, माई-बाप! इसे सूली पर चढ़ा दिया जाय नहीं है यह जो हमारी नाक के बाल को रखने नहीं दे रहा है नहीं है यह जो जनता के साथ "

"चुप रहो! ठाकुर एक साथ चिल्ला पड़े। उनका तन काँपने

लगा। उनके नेत्र अंगारों की तरह दहक उठे। कर्कश स्वर में बोले 'यदि फिर कभी हमारी बेटी के बारे में अपमान-सूचक शब्द निकाला तो हम तुम्हें जिन्दा दीवार में गड़वा देंगे।"

और तब उन्होंने भूखे सिंह की भाँति रामू को देखा। उनकी जलती दृष्टि में उनके अन्तर्मन का विद्रूप दीख रहा था।

दुर्जन दुर्घटना से स्तब्ध और संज्ञाहीन हो गया था।

अग्नि की प्रचंड ज्वालायें! चटखन की अप्रिय ध्वनियाँ!!

विनाश और महाविनाश!!!

'मैं लुट गया ठाकुर सा मैं लुट गया!' दुर्जन एक बार पुन फफक कर रो पड़ा।

जोर से झल्लाकर कहा "चुप रहो!"

रामू इस तरह सावधान हुआ जैसे किसी अत्यन्त रोमांचपूर्ण नाटक का अंक समाप्त हुआ हो। वह अधीरता से बोला 'आग को बुझाओ!"

सारा समूह आग बुझाने में लग गया।

प्रात होते-होते गाँव एक पूर्ण श्मशान में बदल गया।

• •

ठाकुर सोच रहा था यह आग किसने लगाई?"

श्मशान सम एकान्त और मौन!

"यह आग कौन लगा सकता है? उनकी प्रखर प्रज्ञा इस प्रश्न के साथ मंद पड़ जाती थी। उनके ज्ञान-तंतु मकड़ी की मन्थर गति सदृश काम कर रहे थे।

पवन का तेज झोंका कभी-कभी उनकी विचारधारा में अवरोध उत्पन्न कर देता था।

"इस दुर्घटना के साथ इतना गहरा लगाव और किसे हो सकता है? कहीं चम्पा तो आवेश के वशीभूत होकर ऐसा नहीं कर बैठी? सोचा होगा कि रामू उसे स्वार्थ की पुतली समझता उसके मन को निश्छल और शुद्ध मानेगा। कहीं अपने प्रेम का महान प्रमाणित करने के लिए जोशवश

तो वह ऐसा न कर बैठी हो ? क्योंकि प्राय स्त्रियां ऐसे गम्भीर क्षणों में साधारण धैर्य तक का त्याग कर देती हैं। उनका विवेक प्रत्येक दुर्घटना के झटके मात्र से चपल हो उठता है। उनका मन दुराशंका की कल्पना मात्र से बेचैन हो जाता है क्योंकि वह अत्यन्त कोमल भावनाओं से बनी हुई होती है। विधाता उसे विशेष रूप से दयालु बनाता है मैं गोपी से पूछूंगा ? वह रात भर उसके साथ रही होगी। चन्दा भी उससे विशेष स्नेह रखती है। प्रत्येक प्राणी उसके गूंगेपन के कारण उसे आवश्यकता से अधिक करुणा देता है।

गोपी ! बेचारी रूपवती गूंगी युवती !

वह गति मानवीयता के प्रवाह में बहता ही गया। गोपी उसके समक्ष उतनी ही दयनीय लगती थी जितनी लक्ष्मण को सीता वन में छोड़ने पर लगी थी। वह पराभूत हो उठा। करुणा के प्रबल उद्वेग में वह लहरों पर भटकते हुए काठ के टुकड़े की तरह भटकता रहा।

"चम्पू !"

"कौन ?"

"मैं हूं सांवला।"

"सांवला ! बोलो क्या बात है ?

सांवला अपनी छोटी-छोटी बिन्दु-सी आंखों को एक विचित्र तरह से मिचमिचाकर बोला "एक बात बताऊं ?"

'बताओ।

सांवले की आंखों में भय की दो चार हल्की रेखायें उठी और मिटीं यह आग किसने लगाई है इसे मैं जानता हूं।"

चम्पू के हृदय पर वज्रपात हो गया। आश्चर्य चकित होकर बोला "किसने लगाई है यह आग जल्दी बता।" वह तुरन्त अधीर हो गया "तू चुप क्यों है ? अरे, मुझे क्या देखता है ? बोल न मैं कहता हूं कि जल्दी से बता दे नहीं तो मैं अज्ञात भय के मारे मर जाऊंगा। तू नहीं जानता कि मैं उस भेद को जानने के लिए कितना अधीर हूं, रात भर

सोया नहीं जाग्रत अवस्था में भी बड़े ही विचित्र स्वप्न देखता रहा, उन स्वप्नों ने मेरी आत्मा को निर्बल बना दिया है, अब कृपा करके शीघ्र बता दो कि यह आग किसने लगाई है ?"

गाँव का गरीब कृषक साँवला उसकी आकुलता को देखकर असमंजस में पड़ गया। जम्मू उसे बार-बार कह रहा था कि जल्दी कहो कि यह आग किसने लगाई है पर उसने उसे जानने का मौका तक नहीं दिया।

"तू चुप क्यों है ?" अपने स्वेद कणों को पोंछते हुए वह टूटते स्वर में बोला।

"तेरी उस छोकरी ने"

"मेरी छोकरी ने ?" मानो सहस्र बिच्छू उसे एक साथ काट बैठे हों और वह मर्मान्तक पीड़ा से कराह उठा हो "मेरी छोकरी ने ! मेरी कौन छोकरी है मैं तो अभी तक कुंआरा हूँ फिर मेरी छोकरी कौन हो गई ? तुम्हें अवश्य कोई भ्रम हुआ है। मैं तुम्हें सच कहता हूँ कि मेरी एक भी छोकरी नहीं है।"

वह इतना उद्विग्न और विचलित हो गया था जितना एक निरपराध व्यक्ति अपने पर हत्या का झूठा आरोप लगा सुनकर हो जाता है।

साँवला पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह शान्ति से बोला "अरे वही तेरी छोकरी जो गूंगी है।"

"गोपी !" उसके न चाहते हुए भी गोपी का नाम उसके मुँह से प्रस्फुटित हो गया जैसे प्राणी का अवचेतन मन उसकी अपनी आशा से अधिक बाह्य घटनाओं के प्रभाव में हो और जो समय पर प्रतिक्रिया के रूप में नग्न हो जाता है।

महाकाल तक मृत्यु-सी मूर्च्छा ! आन्दोलन ! आघात प्रतिघात !

अचानक बादल फटा और चाँद निकला।

"ओह, वह गूंगी युवती बेचारी ऐसा अपराध नहीं कर सकती वह तो अत्यन्त भोली और कोमल थी। वह ऐसा जघन्य कार्य नहीं कर सकती अवश्य ही तुम्हें भ्रम हुआ है।"

"नहीं चम्पू मैंने उसे अपनी आँखों से देखा था ।"

"स्वप्न में देखा होगा ।"

"नहीं ! " वह दृढ़ता से चिढ़कर बोला जैसे उसे चम्पू के हठ पर रोष आ गया हो ।

"फिर वह कहाँ है ?

"मैं क्या जानूँ ?"

"चलो उसका पता लगाया जाय ।"

"क्यों ?

"ऐसी राक्षसी-शक्तिवाली नारी कभी हमें बड़ा धक्का दे सकती है ।"

चम्पू और सोमला ने उसे खूब ढूँढा पर उसका पता नहीं लगा ।

हताश होकर चम्पू ने कहा "वह अवश्य गुप्तचर होगी ।"

"कोई भी हो पर हमें इस भेद को भेद ही बनाकर रखना होगा अन्यथा तुम पर विपत्ति टूट पड़ेगी ।"

चम्पू गद्गद् हो उठा और सोमला चला गया ।

फिर वही शून्यता एकान्त एकान्त में उठते हुए विचारों का संघर्ष !

चम्पू सोच रहा था "इस नारी में पाशविक वृत्ति का ऐसा निर्मम चमत्कार क्यों ? वह बड़ी कोमल और सौम्य थी । उसके सलोने चेहरे पर राधा की निश्छलता और सहजता थी । वह विलक्षण स्वरूप हो गया अब समझा मनुष्य भावोद्रेक में इतना डूब जाता है कि वह यह निर्णय करने में भी असमर्थ हो जाता है कि कौन अच्छा और कौन बुरा है ? मैं भी कितना बुद्धू हूँ कि प्रथम दर्शन और बाँसुरी-वादन पर मुग्ध होकर उसे प्रेममयी राधिका समझ बैठा । लेकिन सावधान भी मैं शीघ्र हो गया था कि यह हो न हो कोई विचित्र गलती है इसके पीछे इतिहास के महत्त्वपूर्ण छद्म पृष्ठ हैं । मेरी इस तनिक अनास्था को रामू का चरित्र विश्वास फिर विचलित कर बैठा । उसमें उसे अतीव अनुकम्पा दे दी । वास्तव में जैसा व्यक्ति स्वयं होता है उसे वैसा ही सारा संसार

लगता है।"

उसने अपने समाज को मत्ता जैसे वह मानसिक रूप से भ्रांत हो गया है। पर उसके हृदय के उठते हुए उद्गार उस अकाल की चिन्ता किए बिना ही उसके मस्तिष्क को झकझोर रहे थे। पर उसने वन में आग क्यों लगाई? इसमें उसका कौन-सा स्वार्थ सन्निहित है? निरुद्देश्य ध्वंस की प्रवृत्ति समाज में बहुत कम देखने में मिलती है। गाँव अपना मरेगा उसे क्या? फिर उसने वन जलाकर तो हमें और ही संकट में डाल दिया अन्यथा हम दुखन को समझा-बुझाकर कुछ लेते और कुछ देते या फिर शक्ति का उपयोग करते। उफ! सोनी अवश्य क्रूर और नृशंस औरत है। उसे सभी को संकट में डालकर अवश्य ही अपरिसीम आनंद प्राप्त हुआ होगा। सोनी! क्रूर कठोर पाशविक!

रम्पू ने दीर्घ निश्वास लिया।

उसके मन प्राण में शैथिल्य आ गया।

वह खाट पर निढाल हो गया।

निढाल होते ही उसे निद्रा ने आ घेरा मृत्यु-सी निद्रा नीरव अचल।

• •

तीन दिन तक गाँव में मृत्यु की उदासी छाई रही।

रामू का प्रेम अब चमरुआ का सान्निध्य-सुख की शाश्वत भीख नहीं कर रहा था। वह प्रेम की सुन्दर और स्नेहयुक्त शब्दावली के साथ अधिकतर पूछ बैठता था कि पानी के बिना गाँव का क्या हाल होगा?

चमरुआ निराशा के साथ कहती, "भगवान पर भरोसा रखो। उसने जिस तरह हमारी प्रीत निभाई है उसी तरह वह गाँव के संकट का भी निवारण करेगा।"

रामू न जाने क्यों व्यथित हो उठता था। अपने प्रेम में वह डूब जाना चाहता था पर वह उसमें सफल नहीं हुआ।

दुखन का मस्तिष्क इन दिनों विक्षिप्त हो गया। गाँव समाज पर

उसने बहुत प्रयत्न किया कि रामू और चम्पू को अपराधी बना दे पर वह उसमें असफल रहा। तब वह अपमानित होकर रामू और चम्पा की निंदा-स्तुति करने लगा।

ठाकुर के द्वार पर वह इसलिए असफल रहा क्योंकि उन्होंने स्पष्ट शब्दों में उसे कह दिया था "रामू और चम्पू निर्दोष हैं। वह उस समय हमारे पास खड़े थे।"

दो दिन के बाद प्रभासक गाँव में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। म्लान मुखों पर बसंत की बहार उमड़ आई। ऐसा उत्साह लोगों में आया जैसा सावन के माह की बूँदों के बरसने पर किसानों को आता है।

सबने भक्ति-भाव से विह्वल होकर एक स्वर में कहा "प्रभु सर्व व्यापी है, सर्वदृष्टा है, सर्वपालक है।"

बैलगाड़ियों की पंक्ति।

मधुर घंटा-ध्वनियाँ।

पराग के समान रेत के कण।

ठाकुर स्तंभित प्रजा स्तंभित और रामू-चम्पा स्तंभित।

गाड़ियों के साथ अस्त्र-शस्त्र सज्जित सैनिक भी थे। वे कहते जा रहे थे "महाराजाधिराज राजा रिसालू ने प्रजा के हितार्थ अनाज भेजा है।"

प्रजा में उत्साहपूर्ण जय-घोष—

राजा रिसालू की जय।

धर्मावतार महाराजा की जय।

प्रजा-पालक की जय।

एक ही बात एक ही चर्चा।

स्वयं ठाकुर ने आकर प्रधान सैनिक का सम्मान किया। उनके आतिथ्य का समुचित प्रबन्ध किया गया।

रात-भर अतिथियों का भव्य स्वागत होता रहा। डोमनियों के कामोत्तेजक नृत्य और गीत। चारण के प्रशस्ति गान।

प्रभात होते-होते सैनिकों ने वापस प्रस्थान किया ।

एक बार राजा रिसालू की जय के नारे फिर लगाये गये ।

बाद में समस्त अनाज गाँववालों को बाँट दिया गया ।

लेकिन उस गुप्त वार्ता को ठाकुर ने रहस्य ही बनाकर रखा जो प्रधान सैनिक और उसके बीच प्रस्थान के पूर्व तीन क्षण तक हुई थी ।

सात

रात की थकान राजा रिसालू के अंग अंग में बस गई थी। बिछौना छोड़ने की इच्छा न होने पर भी राजा रिसालू को उठना पड़ा। मन्दिर के पूजन का समय हो रहा था। कभी-कभी घड़ियाल और घंटा बज-बज कर समस्त नगरवासियों को सावधान किये जा रहा था कि जागो और मन्दिर की ओर भागकर अपने अधिष्ठाता के दर्शन करो।

राजा रिसालू प्रातः कर्म से निवृत्त होकर साधारण वस्त्र पहन मन्दिर की ओर जाने के लिए रथ पर आरूढ़ हुए ही थे कि सेनापति का घोड़ा आकर रुका। राजा रिसालू ने वक्र दृष्टि से सेनापति की ओर देखा *जिससे सेनापति को यह जानते देर न लगी कि महाराज उससे उस* दिन से रुष्ट हैं जिस दिन से रानी शीशमहल से भाग गई थी।

"महाराज की जय!" सेनापति का सिर झुक गया।

राजा रिसालू ने तिरछी दृष्टि से केवल सेनापति को देखा।

"रानी का पता लगा लिया गया है। वह बन्दिनी बना ली गई है

अब भी यह हठी अपने साधारण प्रेमी का नाम जपती है। कहती है ा रिसालू जैसे निर्दयी और दुष्ट को वह अपना पति स्वीकार नहीं सकती।"

यह सुनकर राजा रिसालू के अधरों पर पैशाचिक मुसकान नाच । उसे मन्दिर लाया जाय रथ हाँको।"

रथ चल पड़ा।

कुलदेवी का पावन मन्दिर। अपार जन-समूह। घंटों की पुनीत नि। हर्ष उल्लास और भक्ति। जय-जयकार। दर्शन।

नगाड़ों की गूंज—धड़ धड़ धड़ धम्

सेनापति ने उच्च स्वर में कहा "प्रजाजनो! शांत! आज हमारे ाय-प्रिय राजा आपके समक्ष कुछ कहेंगे।"

प्रजा शांत निस्तब्ध गतिहीन।

राजा रिसालू ने भावपूर्ण स्वर में कहा "ईश्वर ने कहा कि प्रजा ा सच्चा हितैषी राजा वही है जो न्याय को अपने हाथ की कठपुतली बनाये। वह सम-दृष्टि रखे, सम-विचार रखे और सम भाव रखे। मैं सी प्रभु का शुद्ध अंश हूँ अतः उसके न्याय का उल्लंघन नहीं कर सकता। योंकि मैं जानता हूँ कि प्रभु सबको देखता है काल सबकी प्रतीक्षा रता है। वह अबोध शैशव उन्मादित यौवन और निकम्मे बुढ़ापे पर मा नहीं करता। मतलब है कि एक दिन सबको उसके दरबार में ाज़िर होना पड़ता है। इसलिए मैं जो भी काम करता हूँ उसमें डर र करता हूँ। जब मैं उससे डरता हूँ तब मैं अन्याय नहीं कर सकता।"

ाजा रिसालू कुछ काल तक मौन रहे और पुनः बोले "मेरे कुछ प्रश्नों ा उत्तर स्वयं प्रजा दे?"

प्रजा सावधान हो गई।

राजा रिसालू जोर से बोले "महा-अम्बर के दण्ड-विधान से सब रिचित है?

"हाँ।"

"यदि कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो उसका दंड क्षम्य है या अक्षम्य ?

"अक्षम्य ।"

"क्या दंड है ?"

"उस कुल्टा का मुँह काला करके सारे नगर में घुमाया जाय और बाद में नगर के चौराहे पर खड़ा करके प्रत्येक नगरवासी से जूते लगवाए जायें और तब उसके प्राण लिये जायें ।"

"लेकिन ?" राजा रिसालू का स्वर उदास हो गया । स्वर में अस्वाभाविक कम्पन आ गया "लेकिन मुझे डर है कि आप अपराधी को देखकर भयभीत हो जायेंगे । आपके पाँव डर से डगमगाने लगेंगे ।"

रिसालू मन्दिर की ओर सम्मुख हो गये । देवी के समक्ष अभ्यर्थना के लिए झुके रहे । तब बोले "मैंने कुलदेवी से शक्ति का वरदान माँग लिया है । साहस माँग लिया है ताकि मैं प्रत्येक के साथ उचित न्याय कर सकूँ सेनापति ! अपराधी को लाया जाय ।"

प्रजा का साँस रुक गया । आँखें फटी-फटी-सी रहकर मन्दिर की ओर लग गईं । ऐसा कौन अपराधी है जिसको दंड देने के लिए रिसालू जैसे पराक्रमी राजा को शक्ति माँगनी पड़ती है ? प्रजा ने देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर किन्तु मुरझाई हुई युवती उसके काले सर्प-जाल से कुंतल, आँखों में आँसू, और अधरों में घनीभूत वेदना ।

"प्रजा इस स्त्री को पहचानती है ?" राजा रिसालू ने पूछा ।

"नहीं ।"

"यह तुम्हारी माँ थी ।"

"माँ ! प्रजा शब्द में फूट पड़ी ।

"तुम्हारे इस नगर की महारानी

"महारानी !" प्रजा में जोर की हलचल मच गई ।

"यह हमारी महारानी नहीं है । सेनापति ने आगे बढ़कर कहा "महानगर के पवित्र सिंहासन की उत्तराधिकारी ऐसी चरित्रहीन नारी नहीं हो सकती ।"

राजा भी हैं ऐसी करके वाला हमारी स्त्रियाँ आवरण में रहती हैं इसलिए आप इनके साक्षात नहीं हो सकते पर हम जो कह रहे हैं बिल्कुल सत्य कह रहे हैं।"

युवती चीखकर बोली "आपके महाराज झूठ बोल रहे हैं। मैं इनकी पत्नी नहीं हूँ मैं आपकी महारानी नहीं हूँ।"

"शांत !" राजा रिमाल् ने आज्ञा दी।

पल भर के लिए गहरी निस्तब्धता छा गई।

"यह महानगर की महारानी है जो पतिव्रत धर्म की मर्यादा को लाँघकर मरण की ओर भागी।"

युवती बीच में ही बोल पड़ी "मैं महाराज को पहचानती भी नहीं। मुझे न्याय चाहिए, प्रजाजनो न्याय !"

"क्या राजा रिमाल् अन्याय करते हैं ?" दीवान ने आगे बढ़कर पूछा।

हाँ हाँ "

"दुष्टा !" राजा रिमाल् का हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। सेनापति ने देखा कि प्रजा में हाहाकार मच गया है। प्रजा आज महाराज का भय न खाकर चिल्ला रही है "धर्मपरायणी महाराज इस नारी का न्याय करें।"

मौन !" सेनापति ने कहा।

प्रजा मौन हो गई।

प्रजाजनो ! राजा रिमाल् मेरे पति हैं या नहीं मैं नहीं जानती। लेकिन मैंने कभी भी इन्हें पति के रूप में न देखा और न अब तक ग्रहण ही किया। मैं अपने पिता के गाँव में रहती थी। मेरे पिता राजा रिमाल् के अधीन भी हैं। मैंने वहीं एक युवक से प्रेम किया। उसे अपना परमेश्वर माना। एक दिन तुम्हारे महाराज आये और मुझे पकड़कर यहाँ ले आये। मैं रोती और चिल्लाती रही पर तुम्हारे कठोर महाराज ने अपने महलों में डेरा डाल लिया। मेरे फूल से कोमल और स्वप्न से मधुर प्रेमी

को तुम्हारे राजा के सैनिकों ने निर्दयतापूर्वक पीटा। वह लाचार बिना पानी की मछली की भाँति तड़पता रहा पानी की एक-एक बूंद के लिए बिलख-बिलखकर सिर फोड़ता रहा पर तुम्हारे करुणा-निधान महाराज को करुणा नहीं आई। नगरवासो ! क्या यही तुम्हारे महाराज का न्याय है, धर्म है ?" युवती ने धिक्कार भरी दृष्टि से एक बार सभी को निहारा "मैं दंड-विधान का उल्लंघन नहीं करूँगी। मुझ में नगर की शक्ति के विरोध की भी क्षमता नहीं पर मैं इतना जरूर कहूँगी कि मैं निर्दोष हूँ निरपराध हूँ। यदि तुम्हारे दंड-विधान में प्रेम करना अपराध है और अपहरण करना निरपराध तो मैं सहर्ष कहूँगी कि मुझे जीवित जला दिया जाय ? मेरे प्रति दया का भाव भी प्रदर्शित नहीं किया जाय। लेकिन नगरवासियो ! यदि प्रेम महान है तो मुझे अपने प्रमी से मिलने दिया जाय। मैं प्रेम-दीवानी हूँ उसकी पीर में मेरा रोम-रोम डूब चुका है मुझे इसमें भी आनन्द है। दर्द में आनन्द क्यों ? क्योंकि मैं किसी से प्रम करती हूँ। वह प्रेम जो सर्वदा से सहिष्णु और मधुर रहा है, ईर्ष्यारहित रहा है जो आत्मश्लाघा नहीं करता गर्व नहीं करता दुष्ट आचरण नहीं करता स्वार्थ की चेष्टा नही करता शीघ्र क्रोध नहीं करता। मैं उसी प्रेम की ही पुजारिन हूँ। तभी तो ईश्वर ने स्वयं कहा मैं प्रेम हूँ।"

युवती ने एक बार फिर स्तब्ध जन-समूह पर दृष्टिपात किया। समूह उसकी बात के प्रभाव में आ रहा था। सबके चेहरों पर व्यथा की हल्की-हल्की रेखायें उभर रही थीं।

"जब ईश्वर प्रेम है, फिर अपराध कैसे ? ओ सहृदय नगर वासियो ! तुम्हारे महाराज ईश्वर के नाम पर अत्याचार का राज्य स्थापित किए हुए है। मैं तुम्हारे राजा की द्वेष के कारण निंदा नही कर रही हूँ मैं तो केवल सत्य का उद्‌घोष कर रही हूँ कि भगवान-स्वरूप यह अन्नदाता कितना पातकी कितना पामर और कितना अन्यायी

"चुप हो जाओ नहीं तो तुम्हारी जिह्वा खींच ली जायगी।"

राजा रिसालू गंभीरतापूर्वक धागे बढ़े और बोले "सेनापति जी ! नवरामी को मेरे राज्य में बात कहने का पूर्ण अधिकार है । कहती जाओ ।

"मन्दिर का पूजा पाठ संध्या-वन्दन ही मनुष्य के भले-बुरे की कसौटी नहीं । केवल महानगर की प्रजा पर प्रभुत्व-वर्षण ही सुयोग्य शासक का माप-दंड नहीं। जरा आप महानगर के बाहर जाकर देखिये कि इस पीड़ित धरती की सन्तान किस प्रकार अपना जीवन बिता रही है ? भूख दरिद्रता अत्याचार में कैसे बल रही है ? उनकी बहू-बेटियों की इज्जत इसी भगवान के समक्ष किस प्रकार लुटती है ? उन लाचार और अपहरण की हुई नारियों में से एक मैं हूं । ईश्वर साक्षी है मैंने केवल एक ही व्यक्ति से प्रेम किया है, उसे तन और मन समर्पण किया है और तुम्हारा यह राजा मुझे जबरदस्ती उठाकर गढ़ में ले आया ! मैं पूछती हूं कि एक राजा को जो बाप के समान है इस प्रकार किसी नारी को उठाकर लाने का क्या अधिकार है ?"

प्रजा में उसके कथन की गहरी प्रतिक्रिया हुई । राजा रिसालू ने एक बार तमाम समूह की ओर इस तरह देखा जिस तरह भूखा शेर भेड़ियों के समूह की ओर देखता है ।

युवती जोर से चिल्लाई "ईश्वर अधिकार और शक्ति के दुरुपयोग की आज्ञा नहीं देता । वह सर्वशक्तिमान और सर्वोपरि होने पर भी हम नादानों पर अत्यन्त कृपालु रहता है और हमारे अपराधों को क्षमा करता रहता है । पर ईश्वर के भय से निश्चित यह राजा काम-वासना की तृप्ति के लिए नारियों का अपहरण करता है गढ़ की फौलादी दीवारों में उन्हें बन्दी कर उनके शरीर को इस प्रकार नोचता है जिस प्रकार शिकारी कुत्ता । मैं जनता की प्रबल शक्ति से पूछती हूं कि क्या यही धर्मात्मा राजा का न्याय है ? अधम कार्य आवरण में छिपाया नहीं जा सकता । यदि दयालु व्यक्ति प्रासाद की निर्जीव दीवारों से भी जाकर पूछे कि उसने नारी के साथ क्या दुर्व्यवहार किया तो वे दीवारें चीख-चीखकर

नहीं कहूँगी कि इस राजा की वाणी मधुर और व्यवहार प्रिय है पर इसका अन्तर हिंस्र की तरह भयंकर और कठोर है। यह जनता-जननी के साथ पैशाचिक व्यवहार करता है।

"मैं एक बार भगवान की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि यह मेरा पति नहीं है। मैं इसे जीवन में कभी भी प्यार नहीं कर सकती। मुझे मेरे प्रेमी के पास जाने दिया जाय। वह निर्मल और सहृदय व्यक्ति मुझे फूल की सुगन्ध की तरह अपने हृदय में बसाये रखेगा। युवती ने अन्तिम बार चीखकर कहा "नगरवासियो! मैं न्याय चाहती हूँ न्याय। मुझे न्याय चाहिए।"

युवती जब मंच पर बैठ गई तब राजा रिसाल उठे। अपनी एक आँख से उन्होंने प्रजा के चेहरों पर संघर्ष करते हुए भावों को पढ़ा। गुस्से में विकृत और घिनौने हुए अपने चेहरे की क्रूरता को मुसकान में बदलते हुए वह अत्यन्त धीर और गंभीर स्वर में बोले "शांत!"

प्रजा में उठता हुआ कोलाहल शांत हो गया। चुप्पी का साम्राज्य स्थापित।

'प्रजाजनो! नगर के न्याय और संविधान के अनुसार आपने अपनी महारानी की बात सुन ली जो कल आपके नगर के महापवित्र राज्य-सिंहासन पर बैठनेवाली थी जिसके समक्ष सब प्रजा के मस्तक झुकनेवाले थे जिन्होंने आज तक सिवाय ईश्वर या ईश्वर के अंश अपने राजा के अतिरिक्त किसी के सम्मुख अपना सिर नहीं झुकाया।"

राजा रिसालू निःश्वास छोड़कर पुनः लम्बे स्वर में बोले ईश्वर हम पर अत्यन्त दयालु है, वह हमारी और हमारे सम्मान की रक्षा इस प्रकार करता है जिस प्रकार जंगल की आग जंगली जानवरों से तप में मग्न किसी योगी की। मैं उस अनादि शक्ति को बार-बार नमस्कार करता हूँ।"

"मैं इस नारी—नारी इसलिए कि न्याय हमारे नगर का न्याय देवता नहीं सुनता है द्वारा लगाये गये पति रिसालू पर आरोप की

सफाई में यह अकिंचन कुछ कहना चाहता है। प्रजा मेरी इस बात पर ध्यान दे कि राजा रिसालू के स्थान पर अब केवल पति रिसालू खड़ा है, प्रजा और राज्य का अपराधी इस स्त्री का पति।

"इस नारी का कहना है कि मैं इसका पति नहीं हूँ। मैंने इसका अपहरण किया है। इसके उत्तर में मैं इतना ही कहूँगा कि मैं इस युवती के बाप को प्रजा के सम्मुख उपस्थित करता हूँ। ठाकुर मजीतसिंह!"

प्रजा ने साँस रोककर देखा—एक प्रौढ़ व्यक्ति जिसका मुख कुन्दन की तरह लाल व तपा हुआ है, सीना ताने स्वाभिमान जन के मुख से बाहर निकल रहा है। वह मंच पर आकर प्रजा को प्रणाम करके मौन खड़ा हो जाता है।

राजा रिसालू ने उससे पूछा "ठाकुर मजीतसिंह! आप भगवान की सौगन्ध खाकर कहें कि क्या आपने आह! ठहरिये।" राजा रिसालू रानी के समीप गये और व्यंग्यात्मक स्वर में बोले "क्या तुम इन्हें पहचानती हो?"

"हूँ।" युवती ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

"क्या यह तुम्हारे पिता हैं?

"हूँ—और आपके आज्ञाकारी दास भी!"

"प्रजाजनो! अपराधिन यह स्वीकार करती है कि वह ठाकुर मजीतसिंह की पुत्री है।" मजीतसिंह को सम्बोधित करके राजा रिसालू बोले "अब आप बताइए ठाकुर साहब क्या यह आपकी ही पुत्री है?"

ठाकुर दुःख से मस्तक झुकाते हुए रूखे स्वर में बोले "है नहीं थी। ऐसी कुल-कलंकिनी और दुराचारिणी को मैं अब अपनी बेटी नहीं मानता।"

"ठाकुर साहब पश्चाताप मत कीजिए। यहाँ न्याय की बात है। आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिए। क्या यह आपकी बेटी है?"

"जी!"

"हमारा इसके साथ पाणि-ग्रहण हुआ कि नहीं?"

"मैंने इन्हीं हाथों से किया था।"

"सुना नगरवासियों ने ?" राजा रिसालू जोर से बोले।

"मक्कार, कुल्टा दुराचारिणी !" प्रजा में यही तीन शब्द गूँज उठे।

युवती बीच में भड़ककर बोली "झूठ ! लेकिन मेरा ब्याह कब हुआ यह तो मैं जानूँ ?" प्रश्न पूर्ण प्रभाव के साथ गूँज उठा।

"जब तू दो वर्ष की थी।" धर्मावसिंह ने कहा।

राजा रिसालू क्रूरता से भरी हँसी हँसकर बोले "ब्याह तो हुआ ही है। तब यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि तुम हमारी पत्नी हो—इस नगर की महारानी ! प्रजाजनो ! अब प्रमाणित हो चुका है। महानगर की महारानी बननेवाली नारी कुल्टा व्यभिचारिणी "

"इसका मुँह काला कर दो !" जोर की आवाज प्रजा के समूह में से आई।

"ठहरो !" राजा रिसालू ने हाथ ऊँचा उठाया।

प्रजा में निस्तब्धता छा गई। तब राजा पश्चाताप भरे स्वर में बोले "ईश्वर ने प्राणी का निर्माण दोष रहित नहीं किया है। एक-न-एक दोष प्रत्येक प्राणी में निहित है। पर मनुष्य यदि अपने दोषों को स्वीकार करके आत्मालोचना करता रहे तो उसके हृदय का अन्धकार प्रभु की कृपा से दूर होता जायेगा और ज्ञान का प्रकाश उसके मानस में सूर्य की भाँति उदित होता जायेगा। पर आज मनुष्य अपनी दुर्बलता और अहंकार के वशीभूत होकर दुष्कर्म कर लेता है, जिससे वह पतन की चरम सीमा को पहुँच जाता है और मृत्यु का भागी होता है। तुम्हारी महारानी वासना के क्षणिक आवेश में अपने नारी-धर्म को तिलांजली देकर कलंकिनी बनी और अब मृत्यु के अंक में न्याय और प्रभु की आज्ञा के अनुसार भेजी जा रही है। यौवन और धन में मदांध यह कुल्टा नारी हमारे नगर का ज्वलन्त पाप है अपमान है, पतन है, इसे स्वयं प्रजा अपने हाथों से दंड देकर संतुष्ट हो।"

"कुल्टा व्यभिचारिणी दुराचारिणी !

प्रजा का प्रत्येक वर्ग में पूर्ण सम्मोहित थी। प्रजा के सम्मानित व्यक्तियों ने आगे बढ़कर युवती को पकड़ा। युवती चीखी 'मुझे छोड़ दो मैं निर्दोष हूँ मैंने प्रेम किया था।

ठाकुर प्रतीतसिंह अपने कानों में अंगुली देकर चलते बने।

युवती को गिरफ्तार नहीं किया गया क्योंकि वह रानी थी। लेकिन उसके मुलायम बालों में धूल भर दी गई। उसके सहस्रों सूर्यों की भाँति दीप्त मुख पर कालिमा पोत दी गई और उसे तमाम नगर में घुमाया जाने लगा।

नगर की युवतियों स्त्रियों और वृद्धाओं किसी ने उस बेचारी के प्रति सहानुभूति प्रकट नहीं की अपितु सभी ने उस विवश आत्मा पर कीचड़ उछाला, गालियों की बौछारें कीं। कुल्टा और व्यभिचारिणी कह-कर उस पीड़ित नारी के हृदय की आग में घी की आहुतियाँ दीं। छोटे मोटे बच्चे तालियाँ बजा-बजाकर उसके पीछे भाग रहे थे कंकड़ और पत्थर फेंक रहे थे।

कितना मार्मिक और करुण दृश्य था ?

नगर के मध्य भगवान शिव का मन्दिर था। युवती जब उस मन्दिर के सम्मुख पहुँची तो एक व्यक्ति ने कहा 'कुल्टा से कहो कि वह नगर-देव महाकाल से अपने अपराधों की क्षमा माँगे।

पर युवती निश्चल रही।

अमीर एक व्यक्ति ने आकर कहा 'यह नगर के श्रेष्ठ नागरिक और रण की आज्ञा है इसका तुरन्त पालन होना चाहिए, तुम नगर-देव महाकाल के सम्मुख अपने अपराध को स्वीकार करो। कहो कि मैं कुल्टा हूँ दुराचारिणी व्यभिचारिणी हूँ। आप मेरे अपराध क्षमा करें।"

युवती अल्पकाल तक मौन खड़ी रही। उसने जलती हुई आँखों से एक बार सबको देखा। समूह आश्चर्य चकित हो गया। युवती ने जिस दर्द-भरी तीक्ष्ण दृष्टि से सबको देखा था उससे सब-के-सब

आशंका से रोमांचित हो उठे।

"आज्ञा का पालन करो !" श्रेष्ठ नागरिक का कठोर स्वर असह्य मूकता को भंग करता हुआ गूंजा।

नहीं करूँगी ! युवती एकाएक गर्जी।

"यह महाकाल है !"

नहीं पत्थर है दयाहीन सत्यहीन, निर्मम पत्थर ! मैं इसके समक्ष अपना शीश नहीं रोऊँगी। मैंने कोई अपराध नहीं किया। मैं निर्दोष हूँ।

श्रेष्ठ नागरिक इस उत्तर से अवाक हो उठे महाराज भी कभी-कभी मधुकर भूलें कर बैठते हैं। सौन्दर्य के निर्मल सरोवर के नीचे छिपे कीचड़ को देखते नहीं। सोचते-समझते नहीं कि यह नारी सुन्दर जरूर है पर निम्न कुटुम्ब की है, गोले ठाकुर की बेटी है तुच्छ है। मैं दंडधारी को आज्ञा देता हूँ कि जब तक यह अपने पापों को स्वीकार न कर ले तब तक वह उसे कोड़े मारता रहे।

इसके बाद बच्चों की सिसकारियां और पुरुषों की हँसी के बीच दंडधारी ने कोमल युवती को पीटना शुरू किया। युवती भी बड़ी विचित्र और हठी थी। मर्मान्तिक पीड़ा की चीत्कारें-सीत्कारें करती रही पर उसने महाकाल के सामने अपने अपराध को स्वीकार नहीं किया। न्याय के विरुद्ध वह झुकी नहीं। अन्त में वह अचेत हो गई। बलि के बकरे को कत्ल करने से पूर्व जिस प्रकार खिलाया-पिलाया जाता है उसी प्रकार युवती को और पीटने के लिये उसका उपचार करके उसे सचेत किया गया। जब उसे चेतना आ गई तब उसे चौराहे पर ले जाया गया।

एक व्यक्ति ने उच्च स्वर में कहा प्रजाजनो ! न्यायप्रिय और धर्म-परायण महाराज ने इस दुराचारिणी को दंड देने के लिये हमें सौंपा है। अतः दंड-विधान के अनुसार अब प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह इस युवती के जूते मारे। प्रजा डरे और सहमे नहीं। यद्यपि यह अपनी महारानी बनकर थी पर यह एक साधारण घर वाले

गोमे ठाकुर की बेटी है।"

इसके बाद युवती के सिर पर जूते पड़ने लगे। जूतों की चोट खाते खाते अन्त में युवती के मुँह से रक्त बह उठा। वह फिर अचेत हो गई। उसका उपचार करके उसे फिर होश में लाया गया।

श्रेष्ठ नागरिक ने कहा "अब इसको भयानक मृत्यु-दंड दिया जायेगा। अभी इसे नगर के बाहर ले जाया जायगा और इसे एक पत्थर से बाँध दिया जायगा। पत्थर से बाँध दिये जाने के बाद इसे बाणों से छलनी किया जायगा ताकि इसकी अत्यन्त पीड़ा-जनक मृत्यु हो और हमारा राजा इससे प्रसन्न हो।"

युवती को नगर के बाहर ले जाया गया वहाँ उसे एक पत्थर से बाँधकर उस पर बाण छोड़े गए। जल्लाद उस पर कस-कसकर आक्रमण करने लगे और उसके सुन्दर और कोमल तन से खून की धारा बह उठी।

नारी चीखती रही धरती सिसकती रही और मिट्टी करुण क्रन्दन करती रही पर राजा रिसाम् के नगर के व्यक्तियों के चेहरों पर अमानवीय मुस्कान खेल रही थी जैसे किसी अज्ञात शक्ति को प्रसन्न करने के लिये वे इतने क्रूर और अमानवीय हो गए हैं।

नारी के प्राण पखेरू जब उड़ गये तो वे निर्दयी लोग वहाँ से लौट आये। घोर सन्नाटा छा गया।

"प्रभु ! उन नगरवासियों को कभी भी क्षमा नहीं करता है जो राजा के अत्याचार का सामना नहीं करते।" एक आवाज वहाँ गूँज रही थी "जो विवेक से काम नहीं लेते।"

रात का गहरा सन्नाटा कुत्तों की भौं भौं आतंक और धरती का क्रन्दन रोदन और एक अदृश्य आत्मा की दहलानवाली चीखें

• • •

निशीथ का पहर।

शांत नगर के बाहर एक कायर मनुष्य जब विकृत

निश्चल कदम उठाता बढ़ रहा है। उसने मद से बचने के लिये काले वस्त्र पहन रखे हैं। वह जाता है, लाश को बाहर निकालता है और उससे लिपटकर आठ-आठ आँसू रो पड़ता है। यह अभागा और कोई नहीं है इस युवती का प्रेमी है। इसने इस कमल की पंखुड़ियों को सहला-सहलाकर यह साहस बँधाया था कि तू साक्षात प्रेम है और प्रेम निर्मम होता है। वह पराजय की जगह मृत्यु स्वीकार करता है और इस प्रेमिका ने अपनी समस्त खुशियों का त्याग कर प्रेम को स्वीकार किया और प्रेम पर बलिदान भी हो गई।

पर यह कायर पुरुष कभी निकला! यदि इसमें भी नारी के हृदय की तरह प्रेम का प्रबल तूफान होता तो क्या यह अपनी प्रेमिका के साथ मर-मिट नहीं जाता? अपने को समाप्त नहीं कर लेता? प्रकृति कह उठी—"*डरपोक! अब क्यों आया है तू कमल का पराग! इसे छू न* प्रेम को कलंकित न कर। यह प्रेम की वह निष्कलुष-पावन मूर्ति है जिस पर विश्व गर्व करेगा और तू? तू जड़ है मानव नहीं। मानव होता तो इसके साथ अपने हृदय में विद्रोह की स्फुलिंग ज्वलित कर सत्वर हो जाता। संसार कहता यह इसका प्रेमी है। आकाश कहता—यह इसका प्रेमी है, धरती कहती—यह इसका प्रेमी है।

"पर तू तो इसे अपवित्र करने के लिये आ गया है। पामर, नीच दुष्ट! क्यों तूने इससे प्रेम किया? चला जा धिक्कार है तुझे! "चला जा इस पवित्र आत्मा को छू न तेरे स्पर्श से यह अपवित्र हो जायेगी।"

पर उसका प्रेमी रोते-रोते उसका दाह-संस्कार कर ही देता है।

• •

प्रभात हो गया था। पूर्व में सौन्दर्य का फूटता हुआ झरना धीरे धीरे समस्त दिशाओं में फैल रहा था। पक्षियों की चहचहाहट और नागरिकों का उभरता हुआ हल्का-हल्का कोलाहल वातावरण में छा रहा था।

राजा रिसालू मखमली गद्दों पर तन्द्रा की अवस्था में पड़े थे। वो

दासियाँ उनके पाँवों को दबा रही थीं।

"चतुरसिंह को बुलाओ!" राजा रिसालू ने उद्विग्न अवस्था में ही आज्ञा दी।

एक दासी उठकर चली गई।

पाँच क्षण ऐसे ही बीत गये।

"आज्ञा अन्नदाता?" चतुरसिंह गर्दन झुकाकर खड़ा हो गया।

"प्रजा ने हमारे न्याय के बारे में क्या कहा?"

"अन्नदाता! सभी ने आपको न्याय-प्रिय कहा और युवक-समूह ने आदर्श।"

राजा रिसालू मुसकरा पड़े, "पर किसी ने हमारे रूप की चर्चा तो नहीं की?"

"नहीं अन्नदाता।"

"ओह! … अब तुम भी जाओ।"

शयनकक्ष खाली हो गया। राजा रिसालू ने आदमकद शीशे के सम्मुख जाकर अपना रूप देखा और आत्म-ग्लानि से पीड़ित होकर बड़बड़ाये, "मेरी प्रीति के भयवश लोग मेरे इस भयानक रूप को एक चीरा को भूल रहे हैं।" एक अपूर्व दुःख और आत्म-संताप की रेखा उनकी आकृति पर नाच उठी।

आठ

गोधूलि की बेला। गायों का वन से आगमन। राजा रिसालू का चित्त नितान्त उद्विग्न।

"खम्मा अन्नदाता!" चतुरसिंह ने सिर झुकाकर कहा।

"कहो?"

"एक रूपवती युवती आपकी दर्शनाभिलाषिणी है।"

"कौन है?"

"मैं नहीं जानता।"

'कहाँ से आई है?

"कह नहीं सकता।"

"चतुरसिंह! गर्जे पड़े राजा रिसालू "हमारे समक्ष कभी अधूरी बात लेकर मत आया करो। जाओ उसका पूरा-पूरा पता लगाकर आओ।"

"वह बोलती नहीं है उसने लिखकर बताया है कि वह एक खास

तक किसी से बात नहीं करेगी। यदि उसने मौन भंग किया तो वह देवी अभिशाप से कोढ़ी हो जावेगी।

"उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत करो।"

"जो आज्ञा।"

चतुरसिंह चला गया।

राजा रिसालू विचारों के संघर्ष में चंचल हो उठे। विचित्र नारी है, एक वर्ष का मौन धारण कर रखा है किसी से बोलेगी नहीं क्यों नहीं बोलेगी मैं प्रयास करके उसका मौन भंग करवाऊँगा। यदि वह इससे भी नहीं मानेगी तो राजा रिसालू इन हाथों से उसके रोम रोम को दबोच देगा।

चतुरसिंह ने पुनः आकर अभिवादन के साथ निवेदन किया कि वह आपसे एकान्त में मिलना चाहती है।

"रहस्यमयी!" राजा रिसालू बड़बड़ाये "उसे भेज दो।

चतुरसिंह चला गया।

युवती कमरे में प्रविष्ट हुई।

राजा रिसालू उसे बिना देखे ही उच्च स्वर में बोले "हमारे यहाँ तुम्हारा ऐसा ढोंग और दंभ नहीं चलेगा। प्रभु की महा सत्ता में भरोसा रखनेवाले राजा रिसालू के समक्ष नम्र बन जाओ। प्रभु ने मुझे कह रखा है कि तुम सर्वस्व हो। तुम्हारे गत जन्म के पुण्य महान् हैं। अतः हम किसी दुष्कर्म के लिए उद्यत हों इसके पूर्व तुम अपना हठ छोड़कर अपने बारे में कहो। हमें यह बताओ कि तुम कौन हो? राजा रिसालू ने हठात् युवती की ओर देखा। देखते रहे एकटक, अपलक निरन्तर।

युवती ने अपनी पलकें झुका लीं।

"मैंने तुम्हें कहीं देखा है जागरण में या स्वप्न में पर मैंने तुम्हें देखा अवश्य है।"

युवती स्थिर भाव से खड़ी रही। वह कुछ भी नहीं बोली। उसका मौन राजा रिसालू के लिए असह्य हो उठा। क्रोध से तड़पकर बोले "मैं

कहता हूँ कि अपना मौन तोड़ दो।"

युवती ने तुरन्त समीप रखी हाथीदाँत की कलम से लिखकर बताया "मैं गूँगी हूँ पर महाराज की कृपा और दया का डंका सुनकर शरण में आ गई हूँ। शरणागत पर दया कीजिए।

"अरे तुम हो कौन ?"

"आपके रूप की प्यासी। मैं आपके आन्तरिक सौन्दर्य पर विमुग्ध हूँ। राजा रिसालू ने बोलने का प्रयास किया पर युवती लिखती गई "बचपन से आपके प्रताप की कहानियाँ सुनती आ रही हूँ। भगवान के अभिशाप से अब मुँह में जिह्वा नहीं है पर हृदय की वाणी सदा आपके दर्शन के गीत गाया करती है। मैं धन्य हूँ कि आपने मुझे दर्शन दे दिए।

युवती की आँखों में कृतज्ञता चमक उठी।

उसके श्याम कपोलों पर लज्जा की रेखाएँ इतनी आकुलता से दौड़ी कि राजा रिसालू तड़पकर रह गए। फिर भी संभलकर बोले "मैंने तुम्हें देखा है कहाँ देखा है, मुझे स्मरण नहीं पड़ता। और अब तुम क्या चाहती हो ? राजा रिसालू चहलकदमी करने लगे।

"मैं चाहती हूँ कि आप मुझे आश्रय दें। मैं आपको प्रेम करती हूँ— परम पुनीत प्रेम मुझे आपकी बाँहों की जरूरत है मैं आपके चरणों की दासी बनना चाहती हूँ।

'गूँगी !" राजा रिसालू भड़क पड़े 'यह दुस्साहस ?

राजा रिसालू ने देखा कि वह अपरिचित गूँगी युवती उनकी भर्त्सना से तिल भर भी नहीं काँपी। पूर्ववत धीर-गंभीर खड़ी रही।

"मैं पूछता हूँ कि तुमने यह दुस्साहस कैसे किया ? क्या तुम्हें अपने जीवन से मोह नहीं ?"

युवती ने अत्यन्त सकरुण दृष्टि से रिसालू की ओर देखा। करुणा और क्रूरता का संघर्ष बड़ा विचित्र लगता है। राजा रिसालू की चहलकदमी बढ़ गई। कड़ककर बोले 'गूँगी जीवन की सुरक्षा चाहती

हो तो लौट जाओ।

"कहाँ?" युवती ने पूछा।

"जहाँ तुम्हारा मन चाहे।

"मैं आपके गढ़ में रहना चाहती हूँ अथवा आप मुझे मौत के घाट उतार दीजिए।"

"गूँगी!"

"मार दीजिए।"

राजा रिसालू का हाथ दूसरे ही क्षण तलवार की मूठ पर था। लपककर उन्होंने गूँगी का गला पकड़ा और इस मुद्रा में खड़े हो गए जैसे वह उसकी गर्दन काटनेवाले हैं।

युवती निःशंक भाव से खड़ी रही।

और राजा रिसालू?

उन्हें अकस्मात् ऐसा लगा जैसे वह दुर्बल हो गये हैं। उनके विध्वंसकारी हाथ जड़ हो गये हैं। उनका नर-मुंडों से खेलनेवाला मन उस युवती के निश्छलता से तिरोहित भोले मुख को देखकर करुणा से अभिभूत हो उठा है।

मानवी रक्त-पिपासु राजा रिसालू का हृदय गहरी संवेदना की ज्योति से जगमगा उठा। मोम-पुतली की भाँति उनके कठोर हाथ ढीले पड़ गए।

युवती मौन हँसी हँस पड़ी। उसकी सजल आँखें राजा रिसालू के विद्रूप-करुण चेहरे पर स्थिर हो गईं मानो वे स्थिर आँखें कह रही हों कि रुक क्यों गया? मार डाल देखती हूँ कि प्यार की स्थिति में रहकर तू मानवीयता पर कैसे आघात करता है? प्राणी क्रोध में अपनी समस्त चेतना को खोकर पशु बन जाता है तभी ही वह अन्य प्राणी की हत्या कर सकता है अन्यथा प्राणी प्राणी को नहीं मार सकता।

राजा रिसालू पुनः चहलकदमी करने लगे।

आवेग, क्षोभ, ग्लानि!

"तुम कौन हो?" एकाएक वह चिहुँक उठे।

युवती ने अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपनी जिह्वा निकाल दी। कटी हुई जीभ देखकर राजा रिसालू का अन्तःकरण तड़प उठा "गूँगी!"

गूँगी गूँगी गूँगी!

यह शब्द राजा रिसालू के चारों ओर सहस्रों कंठों से प्रस्फुटित होकर गूँज पड़ा, ध्वनित-प्रतिध्वनित हो उठा।

गूँगी आश्वस्त होकर शैया पर अर्धशायित हो गई। राजा रिसालू के ललाट पर बेचैनी के स्वेद कण उभर आये। वह प्रकोष्ठ के एक छोर पर नेत्र मूँदकर खड़े हो गये।

युवती ने देखा दिवा-स्वप्न में मग्न राजा रिसालू सुखद-कल्पना में विचरण कर रहे हैं। उनके चेहरे पर कुछ क्षण पूर्व की विकलता, उद्विग्नता और व्यथा थी वह इस भाँति लुप्त हो गई है जिस तरह वर्षा के बाद काली घटाएँ।

वह बड़ी सरलता से बोले "मैं तुम्हें अपनी पड़दायतण[1] बनाऊँगा।"

गूँगी ने अपनी अस्वीकृति दे दी।

"फिर?"

"मैं रानी बनकर रहना चाहती हूँ।" युवती ने बड़े साहस से लिखा।

"रानी?" चौंक पड़े रिसालू।

युवती ने अपनी गर्दन हिला दी।

राजा रिसालू पुनः विचारों में मग्न जान पड़े। तत्पश्चात् उत्सुकता से बोले "तुम रानी बनोगी?"

राजा रिसालू सोचने लगे। उन्हें अपनी रानी के वे शब्द याद आये, जिन्हें एक दिन उसने विकृत स्वर में कहे थे "आपने कभी दर्पण में

---

१ विशेष रखैल जो रानियों के बाद सबसे अधिक सम्मानित होती है और घर में ही रहती है।

अपनी प्रतिछाया देखी है ? इन्सान के भेष में शैतान कुरूप घिनौना !

राजा रिसालू ने तड़पकर उसके कपोलों पर दो घूंसे जमा दिए थे । रानी अचेत होकर गिर पड़ी थी पर उस अवस्था में भी वह यह कह रही थी शैतान कुरूप घिनौना !”

अन्तर्व्यापित अपरिसीम अज्ञात आनंद की अनुभूति से राजा रिसालू का आनन दिव्य ज्योति की भाँति दीप्त हो उठा । आशा और आस्था का महासागर उसकी एक साँस में लहरा उठा ।

'यह गूंगी है—' यह वाक्य उसके अन्तःस्थल की गहराइयों से उठ कर उसके मानस में गंभीर रूप से छा गया जैसे यह वाक्य न होकर उसके भावी जीवन का सुखद घोष हो ।

“यह गूंगी है !” उन्होंने इस वाक्य को उसी श्रद्धा और भक्ति से दोहराया जिस श्रद्धा और भक्ति से एक अपराधी प्रभु के समक्ष अपने पापों की क्षमा माँगता हो ।

युवती अनिमेष दृष्टि से रिसालू के चेहरे के परिवर्तन को देख रही थी । राजा रिसालू ने उसे एक बार देखा फिर प्रस्तर-चित्र से सज्जित प्राचीर पर अपनी दृष्टि जमाकर विचारने लगे—यह गूंगी है, अतः यह मुझे कभी भी कुरूप घिनौना शैतान नहीं कहेगी । फिर यह मुझे हार्दिक प्यार करती है मुझे कभी भी उलाहना नहीं देगी प्यार करेगी वास्तविक प्यार । फिर इतनी चिन्ता ?

मैं तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा !” वाक्य उसके मानस से उबल पड़ा । “सौन्दर्यवती तो है ही फिर ?” वह उतावली से बोले “मैं तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा ।

युवती ने एक पतिव्रता की भाँति उनके चरण स्पर्श किए और उनसे प्रार्थना की कि वह ठाकुर जोर जी के गाँव में अनाज भिजवायें । वहाँ अकाल पड़ा हुआ है ।

राजा रिसालू ने पढ़ा और आज्ञा दी “तुरन्त गाड़ियों पर अनाज लादकर भेज दिया जाए ।” रामू के गाँव में अनाज आने का यही रहस्य था ।

मौ

गाँव की राजपूत टोली में रामू और चमरणा के प्रति जो रोष उत्पन्न हुआ था वह दिन-ब-दिन अपना भयंकर रूप धारण करने लगा। राजपूत टोली का सरदार दुर्जनसिंह जो स्वयं चमरणा पर मोहित और आसक्त था वह राजपूतों में विष वमन करके उकसा रहा था कि यह राजपूतों के सम्मान का प्रश्न है, एक सुनार का लड़का राजपूतनी के संग प्रेम लीला करे, यह राजपूत जाति के लिए डूब मरने की बात है।

बात कैसी भी हो पर राजपूतों के लिए यह असह्य था कि उनके कुटुम्ब की पगड़ी उनकी ही रैयत का एक साधारण छोकरा उछाले। इसलिए वे सबके सब ठाकुर जोर जी के दरबार में हाज़िर हुए।

ठाकुर जोर जी अपनी बैठक में बैठे-बैठे किसी चारण से अपनी स्तुति के दोहे सुन रहे थे। उनके चाकर वाह-वाह करके चारण को प्रोत्साहित कर रहे थे।

दुर्जनसिंह राजपूत-टोली के सहित ठाकुर जोर जी की बैठक में

पहुँचा। वीर जी ने मुसकराकर उन सबका सम्मान किया और पूछा "क्यों दुर्जन आज रास्ता कैसे भूल गये ?

दुर्जन ने एक बार राजपूत टोली की ओर देखा और बोला "ठाकुर सा! आज दुर्जन अकेला नहीं सारे गाँव के राजपूतों के साथ आया है।"

"यह तो और भी प्रसन्नता की बात है।"

"लेकिन हमें बहुत दुःख है।" दुर्जन का चेहरा उदास हो गया। उसके स्वर में गहरी वेदना थी।

"क्या बात है दुर्जन ?" वीर जी गंभीर हो गये। उनकी दृष्टि दुर्जन पर स्थिर हो गई "साफ-साफ कहो।"

दुर्जन सहमते-सहमते बोला "मैं अकेला नहीं ये सारे राजपूत कहते हैं कि ठाकुर सा हमारी पगड़ी को उछालने पर उतारू हो गये हैं। वह हमारी नाक जान-बूझकर कटवाना चाहते हैं।"

"क्या बकते हो दुर्जन ?" ठाकुर सा एकदम लाल हो उठे— "दुर्जन! तुम जानते हो कि तुम किससे बात कर रहे हो ?"

"अन्नदाता!"

"वीर जी ने सदैव राजपूतों की भलाई और अच्छाई में अपना जीवन होमा है और तुम उन पर यह लांछन लगा रहे हो ? लज्जा नहीं आती ?"

दुर्जन ने कहा "ठाकुर सा! बात यह है कि कमला कोली के छोरे के साथ दिन के उजाले में और रात के अँधेरे में "

"दुर्जन! आप एक अक्षर भी आगे तो हम तुम्हारी जबान निकाल लेंगे। कमला हमारी बेटी है और हम अपने खून से भली भाँति परिचित हैं। इसके बारे में यदि कुछ कहने आये हो तो वापस चले जाओ। राजपूत होकर अपनी ही पुत्री के बारे में इतनी हेय भावना रखते हो ? हम कहते हैं कि तुम्हारे पाप की सीमा आ गई है और यदि ये सारे राजपूत भी ऐसा सोचते हैं तो हम इन्हें भी आज्ञा देते हैं कि वे आदर-सहित यहाँ से प्रस्थान कर लें।

सारे राजपूत जोश में तमतमा कर चले गये। दुर्जन की यह दशा थी कि उसके शरीर में तो प्राण ही नहीं रहे। अपनी मानसिक अवस्था पर अधिकार कर उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह जब तक रामू चनखा का विनाश नहीं कर देगा चैन से नहीं बैठेगा। ऊपर से राजपूत टोली ने उसे और भला-बुरा कहा। लेकिन सारे राजपूत जोर की के इस व्यवहार से असन्तुष्ट हो उठे। वे सीधे जोखी के घर गये और उसे ताड़ना दी "यदि तू अपने लड़के को काबू में नहीं रखेगा तो हम उसको कत्ल कर देंगे।

कुम्हार कुम्हारिन से पहुँच न पाये तो गधे के कान खींचने लगे। जोखी ने हाथ जोड़कर उनसे क्षमा माँगी और विश्वास दिलाया कि वह रामू को चमरण से नहीं मिलने देगा

राजपूत टोली के चले जाने के बाद जोखी रामू की माँ के पास गया। माँ बान कूट रही थी। जोखी इस तरह बैठा जैसे अब उसके पाँवों में शरीर का भार ढोने की शक्ति नहीं है।

"यह राजपूत लोग क्यों आये थे ?" माँ ने अन्यमनस्क भाव से पूछा मानो उसे इस घटना से बहुत ही कम दिलचस्पी है।

"मेरा सिर काटने !

"हाय माँ ऐसे बोल अपने मुँह से मत निकालिये। पहले मुझे चुनरी ओढ़ा कर विदा कर दीजिए।" और माँ किसी असीम शक्ति के प्रति भावावान हो उठी।

"तुझे चुनरी ओढ़ा कर मैं निकासूँगा या तेरा लाडला मेरी बोटी बोटी कटवाकर चीलों और गिद्धों को खिलवायेगा यह तू देखती जा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं रामू के बापू ? रामू ऐसा नहीं कर सकता। वह तो गाय की तरह सीधा और भोला है।" माँ के स्वर में ममता उमड़ रही थी और आँखों में स्नेह का सागर।

'तेरा लाड़ ही तो उसे बिगाड़ रहा है रामू की माँ लाख बार कहा कि उसे चमरण से न मिलने दे पर तू तो ठहरी कि बच्चा है बाद में

समझ जायेगा अभी खेलने दो। दोनों एक-दूसरे को बहुत चाहते हैं पर अब? अब राजपूत कहते हैं कि यदि रामू ने चमरा से मिलना बन्द नहीं किया तो वे रामू को कत्ल कर देंगे।

'हैं! एक चीख के साथ माँ की आँखें विस्फारित हो गईं। अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसके ललाट पर पसीना चमक आया।

रामू के बाप का हाथ पकड़ती हुई वह कम्पाती भरी स्वर में बोली "यह आप क्या कह रहे हैं?"

'रामू की माँ! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ अभी अभी राजपूत लोग मुझे कहकर गये हैं।" जोशी का स्वर आर्द्र हो उठा "रामू की माँ! यदि राजपूतों ने कत्ल कर दिया तो?

मैं उनका कलेजा निकालकर खा जाऊँगी रामू के बापू! यदि राजपूतों को अपनी इज्जत ऐसी ही प्यारी है तो अपनी इज्जत को तालों में बन्द करके रख लें। मेरा रामू ताला नहीं तोड़ेगा।" माँ का रूप रौद्र हो उठा। स्वर में विद्रोह भर उठा। रणचंडी की भाँति गर्जती हुई बोली "मैं माँ हूँ, मेरी कोख खाली करके इन मोंछवालों को क्या और भाएगा।"

जोशी ने उसे समझाया 'नहीं रामू की माँ तू तो गुस्से में भर उठी है समझती नहीं कि इस गाँव पर राजपूत राज करते हैं। क्यों नहीं अपने बेटे को ही रोक लेती? अपने रामू के लिए तो चमरा से मोटी-मोटी छोरियाँ मिल जावेंगी।"

माँ ने कहा 'अच्छा अच्छा।"

"माँ!" रामू ने घर में प्रवेश करते ही पुकारा। माँ कुछ बोले इसके पूर्व ही जोशी फट पड़ा "कहाँ मरा था?"

रामू हतप्रभ हो गया। प्रश्न भरी दृष्टि से माँ की ओर देखकर बोला "यहीं था गीगू के साथ बैठा-बैठा गप्पें लड़ा रहा था।"

'या चमरा के साथ रात की झुरमुट में "

'अब आप चुप रहिए, देख रामू तेरा चमरा से बोलना राजपूतों

को अच्छा नहीं लग रहा है। इसलिए तू चनरा से मिलना-जुलना बन्द कर दे।"

रामू कुछ देर तक सोचता रहा फिर दृढ़ता से बोला, "मैं उससे मिलना-जुलना बंद नहीं कर सकता।"

"क्या कहा?" जोधी ताव में आ गया, "क्यों नहीं बन्द कर सकता? है कौन वह तेरी? नालायक कहीं का! सबको घोलकर पीना चाहता है!"

माँ धैर्य से बोली, "इसमें लाल-पीले होने की क्या बात है? बात को बात के ढंग से समझाया जाता है।" उसने रामू के सिर पर हाथ फेरना शुरू किया, "देख बेटा, चनरा से मिलना-जुलना कोई पाप नहीं है। पर इसमें उस बेचारी का ही बुरा है। लुगाई[1] जाति ठहरी, लोग व्यर्थ बदनाम करेंगे और फिर तू उसके बाप को भी जानता ही है। राजपूत है, जहाँ इज्जत के बदनाम होने का सवाल उठता है, वहाँ तलवारें ही निकलती हैं। यदि तू चनरा को मरवाना चाहता है तो मरवा दे।"

रामू का क्रोध ठंडा पड़ गया। चनरा की मृत्यु की कल्पना से उसकी आत्मा काँप उठी। स्नेहपूरित स्वर में बोला, "माँ! मैं यत्न करूँगा।"

वह उठकर जाने लगा कि जोधी ने टोका, "उमराव जी, अब चले कहाँ? चलिये बैठक में कुछ गहनों के नगीने जड़ने हैं।"

रामू उन्मन-सा बैठक-खाने में चला गया।

जोधी रामू की माँ से बोला, "यह चनरा को मोह प्रीत करता है, एक न एक दिन इसकी प्रीत रंग लाकर ही छोड़ेगी, रामू की माँ।"

माँ चिढ़ते हुए बोली, "मोह है, प्रीत नहीं। और बचपन की बातें भी एकदम से तो नहीं भुलाई जायेंगी। धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा। मैं अपने रामू के लिए बहुत ही रूपवती बहू लाऊँगी। ऐसी रूपवती जिसे देखकर लोग दाँतों तले अँगुली दबा लें।"

---

१ स्त्री।

"मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगा।" तभी उन दोनों ने सुना कि बैठकखाने से ठक-ठक् की धीमी ध्वनि आ रही है।

• • •

रात रानी गाँव खेतों टीलों और प्रकृति पर अपना तारे रूपी फूलों का आँचल ओढ़े आई। गाँव के हनुमान जी के मन्दिर के आगे बाबा हरिराम कुछ व्यक्तियों के साथ चौपा का दम मारने लग गये थे। दम मारते समय जो उक्तियाँ बोली जाती थीं उसकी धीमी धीमी भनक कभी-कभी रामू के कानों में पड़ जाती थी।

रामू कमला के ध्यान में मग्न था। उसकी मधुर स्मृति में डूबा हुआ वह कल्पना के सहारे दूर-दूर की उड़ानें भर रहा था। उन कल्पनाओं के सुन्दर विस्तृत दायरे में रामू खो गया था।

रात ढल रही थी।

भावों का आन्दोलन उसके हृदय में घुमड़ने लगा। ऐसा मालूम हो रहा था कि बिना कमला को देखे उसका हृदय घुट रहा है। वह उठा और उसी मुरझाए कुएँ के पास एक वृक्ष था उसके नीचे बैठ गया।

"पगला!"

रामू चौंका। कौन पुकार रहा है उसे? उसने चारों ओर देखा—शून्यता गहरी शून्यता निर्जनता और भय।

वह उठा और ठाकुर के डेरे के कुछ ही दूर पर खड़ा होकर पागल की भाँति डेरे को निहारने लगा। उसने तारों को याचना-भरी दृष्टि से देखा जैसे अंधकार की गहराई को भेदते हुए उसका सन्देश ये तारे कमला तक ले ही जायेंगे। वह व्याकुल हो उठा तड़पने लगा छटपटाने लगा।

भावावेश में पुकार उठा "कमला!"

स्वर घुटकर रह गया।

तब वह दर्द भरे स्वर में डेरे के नीचे धीरे-धीरे गाने लगा—

"भिरमिर भिरमिर मेंह पड़े रे कमला
ठंडी चालै बाल

अबके बिछुड़्या थे कि बनणा कद मिलोगा [१]

दर्द भरा गीत क्रमशः तेज होता गया। देखते-देखते सारा वातावरण दर्द से भर उठा। कण-कण वहीं विरहन वेदना भरा गीत गा उठा। मधुर और दर्द भरे स्वर में—

झिरमिर झिरमिर मेंह पड़े जी
ठंडी बाजे बाल बनणा।

रामू इतना तन्मय हो गया कि उसे बनणा का स्वर पूछता हुआ सुनाई पड़ा—

'रात अँधेरी पिया
जी घबरावे रे'
आंसू भरी आवे
थारी आंसू भरी आवे रे

स्वर सुनते ही रामू के नैन भर आये। वह मेरे की ओर आया।

मृत्यु ने उसे रोका "क्यों रामू मेरे मुँह में आ रहा है ?"

प्रेम ने कहा 'हट, आने दे।'

प्रेम जीत गया।

रामू ने जोर से पुकारा "बनणा !" और बनणा उसके आलिंगन में थी "रामू, रामू तू थारे बिन कहाँ रहा ?"

रामू का तन और बनणा का तन एकाकार हो गया और मन भी। वह बनणा के सिर को सहलाता हुआ बोला "बनणा ! तेरे पंछी के पंख बाँध दिये थे। वह उड़ नहीं सका लाचार था दुखी था।

"अब चलो दिन अपना नहीं है तो क्या हुआ ? रात तो अपनी ही है।"

दोनों चलते चलते बहुत दूर एकान्त में आ गये। वियोग में तड़पती हुई आत्मायें मिलकर स्वर्गीय सुख का आनंद लूटने लगीं।

---

१ रिमझिम रिमझिम वर्षा हो रही है और शीतल पवन चल रही है। बनणा, अब के प्रसन्न होकर कब मिलोगे।

"रामू !

"हाँ ।"

"ठाकुर सा कह रहे थे कि तू राम से न मिला कर ?"

तूने क्या कहा ?

"मैंने कहा कि मैं अपने भगवान से दूर नहीं रह सकती । तब रामू ठाकुर सा ने मुझे पीटा । कहा कि यदि तू राम से मिली तो मैं तुझे जहर दे दूंगा । मैंने कहा कि मैं जहर पी लूंगी पर मुझे अपने देवता से दूर न करो अपनी आत्मा से विलग न करो ।"

"मैं भी यही सोचता रहा चनणा कि गाँववाले अपनी तन को ले लें तो कितना अच्छा हो ? तन के बाद मन के मिलन को कौन रोक सकता है ? यह तन का आवरण ही आत्मा के मिलन का अवरोधक है । हमें इस अवरोधक से मुक्त हो जाना चाहिए ।

प्रभु ने यहीं पर मनुष्य की शक्ति को समाप्त कर दिया है कि वह किसी भी जंजाल और मोह से अपनी मर्जी से अलग नहीं हो सकता ।"

रामू कुछ देर तक मौन रहा । चनणा की आँखें घोर अँधेरे में भटक रही थीं ।

"चनणा !"

चनणा ने रामू का हाथ अपने हाथ में ले लिया ।

"तू मुझ से न मिला कर मैं तुझ पर होते अत्याचार नहीं देख सकता । चनणा ! तेरा एक-एक आँसू मेरी प्रीत का मोती है । यह धरती भी इन मोतियों की व्यथा नहीं सह सकेगी ।"

"यह धरती सहिष्णु की पराकाष्ठा है । अपरिसीम दुख सहने की इसमें अपार क्षमता है । यदि यही अपने से रूठ गई तब अपना कौन रहेगा ? यह माँ ऐसी माँ है रामू जो अपने बच्चों के अच्छे-बुरे सभी कर्मों को देखकर चुप रहती है । इसलिए ही इसे बड़ी माँ कहा है ।"
चनणा के अश्रु निरन्तर बह रहे थे "रामू ! मुझे रोक दे दिन भर हृदय धड़कता रहा है दुख उमड़ता रहा है ।

ललना ने स्पर्श से पता लगाया कि रामू ने अपनी मुट्ठी में मिट्टी भर ली है। अपने मुँह को ललना के मुँह के निकट लाते हुए वह आवेश में बोला, "ललना! कभी-कभी इच्छा होती है कि तुम्हें लेकर भाग जाऊँ, दूर, बहुत दूर, भाग जाऊँ।

ललना ने उसके मुँह पर अपना हाथ रख दिया। "ऐसा भयंकर विचार आज तेरे मन में कैसे आ गया रामू? यह जितना बड़ा संसार है न, उतनी ही बड़ी दुष्टों की भुजाएँ होती हैं। भागनेवालों को चैन कहाँ?"

"पर ललना मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता।

"धैर्य रख मेरे रामू! प्रभु को जो स्वीकार होगा वही होगा। हम रात में मिला करेंगे।" इतना कह ललना धरती की गोद में लेट गई। समीप ही लेट गया रामू। पवन ने दो कोमल हृदयों पर पंखा झला तो निद्रा ने अपने आरामदेह आँचल में इन्हें तुरन्त छुपा लिया।

हँसती हुई तारिकाओं ने होले से कहा "तीन बज गए हैं ओ सुख की नींद सोनेवालो! जागो भोर का तारा उगने से पहले अपने-अपने बसेरों पर चले जाओ अन्यथा तुम पर दुख का पहाड़ टूट पड़ेगा।

पर सुख की नींद क्षणिक नहीं होती। गहरी इतनी गहरी होती है कि सोनेवाला प्राणी निर्जीव हो जाता है। इसी निद्रा की चिंता और दुख से मुक्त निद्रा की इस जगत का हर प्राणी असीम शक्ति से कामना करता है।

शहनाई का स्वर सुनाई पड़ा।

स्वर में दर्द और मधुरता थी। तड़प से भीगी हुई आर्त धुन रामू और ललना के कर्ण-कुहरों में गूँजने लगी। संगीत ने रामू को इस तरह जाग्रत किया जिस तरह सूर्य कमल को विकसित करता है, माँ अपने अबोध बालक को अपनी नर्म-नर्म अँगुलियों से गुदगुदाकर जगाती है।

रामू ने उठकर समीप सोई ललना को जगाया। ललना ने 'ऊँ' करके करवट बदली।

"चनणा जाग न उठ देख चन्दू कितना मच्छा भजन गा रहा है।"

"मुझे सोने दे रामू।"

"मौर भोर हो गया तो ?"

"भोर !" चनणा हड़बड़ा उठी "रामू ! तूने मुझे पहले क्यों नहीं जगाया ? यदि भोर हो जाता तो ?"

"तो ?"

"तो सारे गाँव में हमारी बदनामी हो जाती। राजपूत क्या स्वयं ठाकुर सा तुझे मौत के घाट उतार देते ? चनणा का स्वर काँप रहा था।

रामू हँस पड़ा।

"तू हँसता है ?" वह विस्मित हो गई।

"हँसू नहीं तो क्या करूँ ? अरी पगली अभी तो तूने कहा था कि इस तन म मुक्ति मिल जाय तो मन मिल जाय।

मुक्ति की कामना मैंने दोनों ने एक साथ की थी। मकेली न मैं मुक्ति पाना चाहती हूँ और न तुम्हें पान दना चाहती हूँ।"

रामू लम्बी आह छोड़ता हुआ बोला विधाता को जो स्वीकार होगा वही होगा।"

इसके बाद रामू और चनणा गाँववालों से छिपकर हर दिन मिला करते थे।

दस

फागुन आया।

वासंती पवन उन्माद भरे झोंके उल्लास से परिपूर्ण यौवन हास-परिहास की सामाजिक स्वतंत्रता। बंध्या धरती का सुहागिन बन झूमना मिट्टी की व्यथा का अपार प्रसन्नता में बदलना।

एक महापरिवर्तन। रसमय और मादक परिवर्तन।

रात का समय।

मशालों के प्रकाश और चाँद के उजाले में सारा गाँव एकत्रित हो गया था। आज ठाकुर की ओर से गाँव के बहुरूपिये 'गैर' और 'गींदड़' आदि नृत्य करेंगे। सब मर्यादित मंच पर नाचेंगे और गायेंगे।

ठाकुर के लिए उच्चासन बनाया गया था। उसके पास चनणा बैठी थी। आज रामू भी ममास गायेगा अपनी चनणा को प्रसन्न करने।

मंच पर रामू केसरिया रंग का चोला और बसंती रंग का साफा बाँधकर उतरा। चनणा ने पल भर के लिये उसे देखा और वह खुशी में

झूम उठी ।

रामू ने एक हाथ गाल पर रखकर गाने के लिए अपना मुँह अस्त रवि की ओर किया । सारा समूह शांत हो गया ।

'ढाकर पिट्टो ढाकर धिन'

चंग का बजना आरंभ हुआ ।

अलगोजे की मादक टेर, थाली की खनखनाहट, ढोलक की मधुर ध्वनि और मंजीरों की झनझनाहट ।

रामू रसिया हो गया । धमाल की पहली कड़ी उसी ने ही कही—

"रतन कचोले घी ढुल्यो तो कूंडै ढुल्यो कसार
सूरज मैं थनै पूजती भर मोत्यां को थाल
थनेक मोड़ो उगज्यो
म्हारो नानड़ियो भरतार[1]

रामू के चुप होते ही सारा दल एक साथ गा उठा—

'म्हारो नानड़ियो भरतार

धिन्ना धिन् धिन धिन्ना धिन् धिन डफ बजा । थाली की खनखनाहट और मंजीरों की झनझनाहट ।

श्रोताओं की वाह-वाह और युवतियों की फुसफुसाहट । धनवा के पास बैठी एक कँवारी लड़की ने जो बात की मालिक थी अपनी समीप बैठी एक लड़की से कहा "भायली ! यदि यह गाने का धामा[2] होता तो मैं इसके साथे अवश्य ब्याह करती ।"

धनवा की आँखों में रोष और क्रोध के भाव एक साथ आये । तब

---

१ यह एक युवक की ध्वनि है जो अनमेल विवाहित नारी के विषय में कहता है कि रत्न-जड़ित कचोले में पानी प्याले में घी बिखरा पड़ा है और कूंडा मिट्टी का बना हुआ ऊँचे किनारेवाले बर्तन में पड़ा है कसार यह सब तेरी पूजा के लिए है । हे सूर्यदेव ! मेरे पति की ओर थोड़ा देखकर देरी से उगना क्योंकि मेरा भरतार छोटा है । २ बच्चा ।

उसके होंठों पर मधु-भरी मुसकान नाच उठी ।

रामू की आँखें चमना पर एक पल टिकीं और वह नाचकर गा उठा—

"लाल सुर्ख पट-पट पड़ी हंसा उड़ उड़ जाय
प्रीत पुरानी कारणे चुग चुग कंकर खाय ।

समस्त साजों की एक साथ झनझन । डफ और घुँघरुओं का सम्मिलित स्वर उसकी स्वर-लहरी—मादक और रसमयी ।

फागण आयो
फागण आयो
भली भेर बनू न जाय बलमा
आप नहीं आवें दोनों ससुरा जी न भेजें
ससुरा जी की म्हाने लाज आवे
बालम फागुन आयो रे "

रस की धारा प्रवाहित होती रही । लोग मग्न होकर झूम झूमकर गा रहे थे । रामू का तन पसीने से तर-बतर हो गया था । चमना ने एक झपकी तक नहीं ली पर ठाकुर अपनी निद्रा को नहीं रोक सके । वह बीच में ही उठकर चले गये ।

चार बजे नृत्य और गीत की सभा खत्म हो गई । ठाकुर सा पहले ही चले गये थे इसलिये चमना सबकी दृष्टि बचाती गाँव के साहूकार की हवेली के पीछे आ खड़ी हुई । हवेली के पीछे से रामू के घर का रास्ता था । वह वहाँ से गुजरा कि चमणा ने उसे पीछे से पकड़ लिया ।

वह चौंक उठा ।

"कौन है ?

"मैं ।"

"चमना समाम कैसी रही ?" रामू उच्छ्वासित होता हुआ बोला ।

"बहुत ही प्यारी !" चमणा रामू के सन्निकट आ गई, "रामू !

तेरे मीठे कंठ और रूप की सारे गाँव की छोरियाँ प्रशंसा कर रही थीं। मालिन कहती थी कि तू माली होता, धोबिन कहती कि तू धोबी होता, सेठानी की छोकरी कहती कि तू किसी सेठ का लड़का होता। कहने का मतलब है कि तुझे सब चाहते हैं।"

"पर एक लड़की मुझे नहीं चाहती?" उसने उपहास-मिश्रित स्वर में कहा।

"वह कौन?" उसने हठात् पूछा। उसकी आँखों में विस्मय तैर उठा।

"जिसकी मैं रात-दिन पूजा करता हूँ।" वह भाव-विह्वल हो उठा "चनणा संसार का क्या यह नियम है कि भगवान उस भक्त के प्रति बहुत कठोर होता है जो उसकी स्वच्छ और पवित्र हृदय से साधना करता है।"

चनणा का स्वर मधुर हो उठा "स्वच्छ और पवित्र मन से पूजा करनेवालों को ही भगवान के वास्तविक दर्शन होते हैं। ढोंगी और दर्पी इस पृथ्वी पर नित्य नए भगवान की रचना करते हैं और मिटाते हैं। उनका भगवान उनका स्वार्थ होता है।"

"चनणा! तू मुझ से जुदा न होना। तू है तभी तो मैं हूँ।"

चनणा उससे हठात् अलग हो गई। भयभीत स्वर में बोली "रामू! किसी के पगों की आहट!"

"दुर्जन होगा यह दुष्ट कभी हमें मारकर ही रहेगा।"

"अच्छा मैं चली" चनणा दुबकी-छिपती चली गई।

जब वह अपने डेरे पर पहुँची तो दुर्जन ठाकुर सा के सम्मुख हाथ जोड़कर विनती कर रहा था "माई-बाप! मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ। मैंने अपनी इन आँखों से देखा कि वह कुम्हार का बच्चा चनणा को अपनी बाहुओं में समेटे भगवान भगवान चिल्ला रहा है और चनणा उसके तन में इस तरह एकाकार हो रही है कि राम ही उसका विराट रूप है, निर्माण-तत्त्व है।"

दुर्जनसिंह !" ठाकुर ने चेतावनी दी "यदि तेरा कहा झूठ निकला तो ?"

"प्राण को भी दंड देने मैं छोड़ूँगा ।"

"चलो ।"

ठाकुर और दुर्जनसिंह दोनों रात के गहरे अंधेरे को पार करते हुए उसी जगह पर आये जहाँ थोड़ी देर पहले धरा बीज को अपने अंक में समेटकर आत्मसात करना चाहती थी । ससीम असीम के विराट रूप में अपने अकिंचन अस्तित्व को एकाकार करना चाहता था ।

ठाकुर ने कहा "दुर्जनसिंह, कहाँ हैं वे ?"

दुर्जनसिंह ने अंधेरे में देखने का असफल प्रयत्न किया । दृष्टि की दौड़ाई पर फल कुछ नहीं निकला । काँपता हुआ बोला "ठाकुर सा ! यहीं पर यहीं पर मैंने अपनी आँखों से देखा था ।

'बकता है !" ठाकुर के तन-बदन में आग लग गई । खून आँखों में उतर आया "तू हमारी मान-मर्यादा को कलंकित करना चाहता है । दुष्ट हम तेरी गर्दन धड़ से अलग कर देंगे बता कहाँ है रामू चमरा ?"

दुर्जनसिंह ने झपटकर ठाकुर के पाँव पकड़ लिये । क्षमा-याचना करते हुए गिड़गिड़ाया "मैं झूठ नहीं बोलता ठाकुर सा । मैंने अपनी आँखों से देखा है उन दोनों को ।"

"फिर क्या वे इस धरती में समा गये ?" ठाकुर ने दुर्जन के बाल पकड़कर खींचे "कल हम समस्त राजपूतों के सामने कहेंगे कि इस जैसे पापी व्यक्ति ही सबसे निगाहों की इज्जत बिगाड़ते हैं ।"

"मेरा भाग्य ही खराब है । कर्म ही बुरे हैं नहीं तो आँखों देखी झूठ कैसे हो सकती है ?"

"हरामजादा कहीं का !" ठाकुर पुनः डेरे की ओर चले ।

दुर्जन अकेला रह गया । उसने एक बार धरती पर हाथ फेरकर अपने आप से कहा "माँ ! तू भी मुझसे छल करती है । एक तो गुनार

का जाया हमारी नाक लेकर जा रहा है और दूसरी तू भी उसका साथ दे रही है ?"

दुर्जनसिंह को यह महसूस हुआ कि यह पृथ्वी और प्रकृति आनंद के महासागर में तिरोहित होकर कह रही है—"प्रेम अनंत और महान् है। निष्कपट और निर्भय है। कोई भी प्राणी प्रेम के विशुद्ध सागर में वासना के बुलबुले उठाने की चेष्टा करेगा उसका विश्व का प्रत्येक कण विरोध करेगा।

दुर्जन ने क्रोध में तड़पकर कहा "प्रेम कैसे सफल होगा ?"

ग्यारह

गोपी चली गई पर चम्पू के अन्तर में अपनी मधुर स्मृति और विचित्र स्वभाव का गहरा प्रभाव छोड़ गई। चम्पू गंभीर और मौन रहने लगा। उसके मानस-मन्दिर से न जाने भूली गोपी का चित्र क्यों नहीं हट रहा था। अन्तराल के सूने और गहरे कोने से एक प्रश्न रह-रह सदा उठा करता था कि आखिर वह कौन थी? वह क्यों यहाँ आई थी? उसने उस पर अपने स्वभाव का इतना गहरा प्रभाव कैसे छोड़ दिया? पर चम्पू केवल प्रश्नों के संसार में उलझकर रह जाता था। उत्तर में शून्य दिखता था। निराधार तरंगें जिस प्रकार थोड़ी देर में थककर टूट जाती हैं, उसी प्रकार चम्पू का चिन्तनशील और उर्वर मस्तिष्क थक जाता था।

प्रश्न अवसरवादी राजनीति की तरह उलझता जा रहा था।

कई दिन से वह बेचैन था।

एकाएक उसे किसी अश्व के टापों की आहट सुनाई पड़ी। उसने

मग्न होकर देखा—एक पत्थिपान सौम्य किन्तु उदास मूर्ति अश्वारूढ़ हुई आती चली आ रही है।

वह मठ के पास की पगडंडी की ओर से उसके पास आया।

अश्वारोही ने घोड़े को रोककर पूछा "भैया क्या आप मुझे बता सकते हैं कि एक सुन्दर दुःखी युवती इधर से कभी गुजरी थी?"

"क्यों?"

"यह मैं आपको अभी नहीं बता सकता क्योंकि मुझे उस दुष्टा को बन्दी बनाना है।"

"हाँ वह आई थी और मुझे भी भूल-भुलैया के चक्र में डालकर चली गई। श्रीमान जी क्या आप उस युवती के बारे में मुझे कुछ बताने का कष्ट करेंगे। उतरिये न पथ में आप बहुत थक गये हैं आइये आइये न।"

अश्वारोही लम्बी साँस खींचकर उतर गया।

* * *

सुनहरा सूर्य मूर्तों का घर निर्जन और शून्य!

एक ओर चम्पू रामू और चनणा बड़ी शांति से बैठे थे।

दूसरी ओर आगन्तुक त्रिभुवन संकट मोचन पालथी मारकर विचार मग्न था।

चम्पू ने सूरज की ओर देखकर कहा "यह बदली सूरज को छुपाले तो मजा आ जाय।"

चनणा ने उल्लास-मिश्रित स्वर में कहा "क्यों चम्पू, यदि इन्द्र भगवान प्रसन्न होकर वर्षा करने लग तो? मैं समझती हूँ कि यह प्यासी हुई धरती भी हँस पड़े।"

रामू ने भी मुसकराकर कहा "कल्पना अति सुन्दर है स्वप्न पूरा होना चाहिए।"

त्रिभुवन ने कहा "आप सब अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लीजिए, स्वप्न पूरा हो जायेगा कल्पना साकार हो जायगी।"

सब हँस पड़े ।

प्रसन्नता के तार झंकृत हो उठे। उस झंकार को बीच में ही रोकते हुए विदूषक बोला "वह यूँगी मर्नगपुर की दुष्ट राजकुमारी है। जब मर्नगपुर की प्रजा उसके निरंकुश शासन और अत्याचार की पराकाष्ठा पर विद्रोह करना चाह रही थी तब एक विचित्र घटना घटित हो गई।"

विदूषक इतना कहकर चुप हो गया।

उपस्थिति की उत्सुकता बढ़ गई।

चनणा ने सतावती से पूछा "क्या ?

विदूषक ने आह खींचकर कहा "लम्बी कहानी है सुनाऊँगा तब तक वह दुष्टा मुझसे मृग की भाँति बहुत दूर चली जायेगी। और मैं चाहता हूँ कि उसे बन्दिनी बनाकर उस प्रजा को सौंप दूँ जिस प्रजा के लहू से उसने अपने कपोलों की अरुणाई को स्थिर रखा है।

चम्पू ने प्रश्न-भरी दृष्टि से विदूषक की ओर देखा "वह आपको नहीं मिलेगी। पंख लगे पक्षी की तरह वह उड़ती है। आपको उसे पकड़ने के लिए अन्य साधन ही अपनाने होंगे। शांति से उन साधनों पर विचार करना होगा। न जाने अब तक वह कहाँ पहुँच गई है ?

'फिर आपने अभी भोजन भी नहीं किया है। कल प्रभात होते-होते आप चले जाइएगा। रामू ने विनीत स्वर में कहा।

चनणा ने गंभीर होकर कहा 'नारी इतनी दुष्ट और पापाचारी हो सकती है, मैं नहीं मानती। वह तो सदा प्रेममयी रही है और आप ? मैं उसके चरित्र के बारे में पूरा न जाने आपको नहीं जाने दूँगी।"

"जाने की मेरी भी इच्छा नहीं है। बहुत थक गया हूँ। फिर भी जाना चाहता हूँ। कभी-कभी मनुष्य कर्तव्य के पीछे अनिच्छा से भागता है हालांकि उसका हृदय उस कर्तव्य का पल भर भी साथ नहीं देता है।"

"फिर आप मात्र भर के लिए रुक ही जाइये।" चनणा ने साग्रह कहा। चम्पू दुःख में डूबा हुआ जड़ बना था। क्या बातें हो रही हैं, इससे अभिज्ञ।

सुरेन्द्र मोहन ने अपने सिर का मुकुट उतारकर एक ओर रखा और आश्वस्त होकर बोला 'धनंजपुर की कथा—

राजा दर्पमर्दन ने वृद्धावस्था में एक युवती से ब्याह किया। महामात्य ने इस विवाह का कड़ा विरोध किया पर दर्पमर्दन अपने विचार पर दृढ़ रहे।

नई रानी मेनका ने राजप्रासाद में प्रथम कदम रखा।

रणभेरियों नगाड़ों और बाँसुरियों के स्वागत से राजप्रासाद की अपूर्व शोभा हो गई।

दीपों की जगमगाती पंक्तियों और नर्तकियों के मादक नृत्य से प्रासाद इन्द्र की सभा जान पड़ा।

उत्सव की समाप्ति के पश्चात महाराजा ने बड़ी रानी सोनकुँवर को आज्ञा दी कि वह नई रानी का स्वागत-तिलक करें। पर बड़ी रानी के तन में वास्तविक क्षात्र रक्त प्रवाहित हो रहा था अतः वह नई रानी का स्वागत क्या स्पर्श करने के लिए भी राजी नहीं हुई। परिणाम—दोनों रानियाँ एक दूसरे की शत्रु हो गईं।

बड़ी रानी का कहना था कि नई रानी का पितामह उसके राज्य का एक साधारण सरदार था। महाराजा ने यह विवाह करके उसका और उसके खानदान का अपमान किया है।

और नई रानी भौंहें तानकर मधुर हँसी हँसकर कहती थी 'कुल परम्परा मानवी-रक्त से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। मेरे पिता जी ने महाराजा की अभ्यर्थना नहीं की कि आप मेरी पुत्री का हाथ थामिये बल्कि स्वयं महाराज जी ने मेरे रूप पर मुग्ध होकर यह प्रस्ताव किया था। बड़ी रानी को चाहिए कि वह अपनी दशा का अवलोकन कर कदम उठाये कहीं ऐसा न हो कि उनका यौवन आक्रोश का आवरण ओढ़कर उनकी जिन्दगी को भभकता हुआ अंगारा न बना दे?"

इस तरह शीत-युद्ध दिन प्रतिदिन तीव्रतर होता गया। राजा दर्पमर्दन रूप के सोमरस में डूबकर नई रानी के कुन्दन सदृश तन के पीछे

इस तरह लिपटे रहते थे जिस तरह सांप के चारों ओर मधा।

विवश होकर बड़ी रानी ने महामंत्री तीव्रबुद्धि से सांठ-गांठ करनी शुरू की। तीव्रबुद्धि महामंत्री होकर बहुत ही महत्त्वाकांक्षी था। वह मंद बुद्धि था पर उसकी लालसा असंतुलित राज्य-सत्ता और गृह-दाह की लपटों में एक नए कमल को खिलते देखने लगी। उसने बड़ी रानी के क्षोम और क्रोध से सत्ता के पाँवों को डगमगाने की सोची।

एक दिन एकांत में बड़ी रानी ने तीव्रबुद्धि को बुलाकर सहमते हुए कहा "मैं चाहती हूँ कि मेनका का सौतिया-डाह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है, आज महाराज ने उत्सव का आयोजन किया है उस उत्सव में हमें निमन्त्रण तक नहीं दिया गया। हम चाहते हैं कि उत्सव-समय करती हुई छोटी रानी का काम तमाम कर दिया जाय। यह कार्य इतनी सफलता से किया जाय कि हमारा और आपका नाम किसे भी न हो।" बड़ी रानी की आँखों में प्रतिहिंसा की आग दहक उठी। नथुने फूल उठे और उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में कम्पन-सा आ गया। वह अपने महल में चहलकदमी करने लगी।

तीव्रबुद्धि ने भयभीत स्वर में निवेदन किया "मैं ऐसा कार्य करने में असमर्थ हूँ, महारानी जी! अन्य पुर की ज्वाला रियासत में अशांति की आग लगा देगी। महाराज के विद्रोही सरदार इस विषम परिस्थिति का लाभ उठाकर सिंहासन बदलने की कोशिश करेंगे।

"कुछ भी हो हमें प्रतिशोध लेना है महामंत्री!

"परिणाम?"

"हम परिणाम से नहीं डरते।"

"फिर?" तीव्रबुद्धि कहते-कहते चुप हो गया। उसकी चुप्पी रहस्यमयी थी।

"मैं उसको जान से मरवा दूँगा।" उसने निर्भय होकर कहा।

"मैं तुम्हें मालामाल कर दूँगी।"

"मैं धन-लोलुप नहीं हूँ।"

"फिर ?"

"तीव्रबुद्धि अपना पुरस्कार स्वयं ले लेगा !" कहकर वह हँसने लगा फिर रुका "पर यह सब किस लिये हो रहा है ?"

"छोटी रानी गर्भवती हो गई है। बड़ी रानी ने भभककर कहा। उसकी आँखों में घृणा चमक उठी।

और तीव्रबुद्धि उसकी ओर बिना देखे ही बाहर चला गया। उसके बाहर जाते ही बड़ी रानी ने कुसुम्भे का चषक उठाया और विक्षेप की पुतली बनी सौतिया डाह से दग्ध होकर मद्य में तन्मय होने लगी।

• •

विदूषक ने लंबी श्वास लेकर पुनः कहना प्रारम्भ किया—

तीव्रबुद्धि उन्माद-सागर में तैर रहा था। बड़ी रानी के साथ षड्यन्त्र करके वह अभी अभी आया ही था। अभी तक उसने अपने वस्त्र भी पूर्ण रूप से नहीं उतारे थे कि छोटी रानी के विश्वासी नौकर 'विप्र' ने अपने आगमन की सूचना दी।

तीव्रबुद्धि सजग हो गया।

और वह विप्र को देखने लगा। विप्र ने अभिवादन किया "महामंत्री जी की जय ! छोटी रानी ने आपको इसी समय याद किया है।"

तीव्रबुद्धि के पाँवों की जमीन खिसक गई। ललाट पर स्वेद-कण उभर आये। सँभलता हुआ बोला "उनसे प्रार्थना करना कि सेवक आपकी सेवा में अभी उपस्थित हो रहा है।"

विप्र पुनः लौट आया।

तीव्रबुद्धि रास्ते भर व्याकुल रहा। आशंकाओं का प्रत्यावर्तन रह रह कर उन क्रूर कल्पनाओं के सागर में फेंक रहा था। वह साहस बटोरने की चेष्टा करता पर उसके मन का चोर जैसे उसकी समस्त इन्द्रियों को केवल एक ओर ही केन्द्रोन्मुख कर रहा था कि छोटी रानी उसके रहस्य को जान गई है और वह

छोटी रानी के विलास कक्ष में फूलों की गंध आ रही थी। एक ओर

महाराज के पाँव से अचानक लोच खाया स्वर्ण-चषक लुढ़का पड़ा था। एक बाँदी का टूटा हुआ हार इस बात का प्रतीक था कि आसव की उत्तेजना में मदान्ध दर्पसेन ने उस बाँदी से बढ़कर उत्तेजना से परिपूर्ण कचेष्टाएँ की थीं।

छोटी रानी ने तीव्रबुद्धि पर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि फेंकी। वह सिर से पाँव तक काँप उठा।

"काँप क्यों रहे हैं महामंत्री जी? आज आप साधारण शिष्टाचार को भी भूल गये! हृदय में ऐसी चंचलता कौन-सी है?

तीव्रबुद्धि को ऐसा लगा जैसे छोटी रानी उसके समस्त रहस्यों को जान गई है। उसकी दशा दयनीय हो गई।

'तो आज तुम मुझे कत्ल करनेवाले हो? रानी का शून्य कक्ष उसके कर्कश और घृणा-तिक्त स्वर से काँप उठा 'मूर्ख महामंत्री तुम्हारा नाम तीव्रबुद्धि की बजाय क्षुद्रबुद्धि होता तो अत्यन्त क्षेमस्कर और उपयुक्त होता!" वह उठकर तीव्रबुद्धि के सन्निकट आ गई। उसकी पुतलियों में जड़ता थी और उस जड़ता में हिंसा की बहुरंगी लपटें तुम मुझे सोम्य-जैसा कत्ल करोगे और मैं तुम्हें अभी बन्दी कराती हूँ!"

छोटी रानी के मुख से इतना शब्द उच्चारित हुआ कि तीव्रबुद्धि ने अपनी तलवार को सँभाला।

"मैं " वह हठात् बोला कि शिप्र की तलवार की नोक ठीक उसकी गर्दन पर आ टिकी।

'जरा भी हिले तो गर्दन धड़ "

बीच में ही छोटी रानी मुसकराकर बोली, 'यह बेचारा मुझे क्या मारेगा शिप्र? छोड़ दो इसे और समझा दो कि भविष्य में अधिक सक्षम होकर षड्यंत्र बनाये। हत्या कराना मेरा कार्य नहीं है। मैं किसी को नहीं मरवा सकती। यही तो मेरे हृदय की दुर्बलता है शिप्र!"

तीव्रबुद्धि मुक्त कर दिया गया।

इस युक्ति ने तीव्रबुद्धि के पौरुष को जैसे चुनौती दे दी। वह अप
मान की आग में जल उठा।

उसने यह निश्चय कर लिया कि वह छोटी रानी से अवश्य प्रतिशो
लेगा।

वह आसन पर आया और यह सोचने लगा कि वह किस तरह छोटी
रानी के प्राणों से खेले?

उसके समक्ष तीन वस्तुएँ पड़ी थीं।

एक प्याले में विष, एक हीरे की अँगूठी और एक चमचमा
तलवार।

तीन वस्तुएँ, विभिन्न उपाय और संघर्ष।

आखिर उसने अपनी बाँदी मधूलिका को पुकारा।

"श्रीमान जी की जय!"

मधूलिका राजपूताने से लाई गई बाँदी थी। इसलिए उसका शरी
प्रत्यंग स्थानीय बाँदियों से अधिक सुन्दर और सुगठित था। रंग गो
था और माँस-माछ भी अत्यन्त रुचिकर लगते थे। मधूलिका की वेशभू
पर राजपूताने का बहुत प्रभाव था।

अभी उसने रंग-बिरंगी सोने के छापे की चुनड़ी लहँगा
'कांचली'[1] पहन रखी थी। उसके ऊपर का भाग कांचली के कारण
था। वह कुँवारी थी इसलिए उसके माथे पर बोर नहीं था। वैसे
नाक में नथली जो असली मुक्ताओं से भरी हुई थी पहने हुए थी। का
में सोने के तारों की बनाई बालियाँ थीं और वक्षस्थल पर
लटक रहा था।

'मधूलिका!" तीव्रबुद्धि ने उसकी ओर दिखा देते हुए उदासी
कहा "आज तुम्हारा स्वामी बड़े संकट में पड़ गया है। इसे तुम्ह
सहायता की आवश्यकता है।"

---

१ कंचुकी।

मधूलिका ने नत नयन करके धीमे स्वर में कहा "आज्ञा कीजिए, अन्नदाता ।"

"तुम यह भली भाँति जानती हो कि राज्य गृह में पारस्परिक द्वेषता की आग तीव्र गति से जल चुकी है । दोनों रानियों की जलन पहले-पहले एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगी हुई थी और अब एक दूसरे के प्राणों की भूखी हो गई है । अवसर अच्छा है । यदि हम इससे लाभ उठायें तो धर्मगपुर का सिंहासन तुम्हारे स्वामी का हो सकता है ।

"तात्पर्य ?"

"तुम किसी भी तरह छोटी रानी को समाप्त कर दो ।"

"क्या ? मधूलिका का चेहरा स्याह हो गया । नयनों में जड़ता आ गई । भयानक विचार सुनकर मधूलिका विमूढ़ हो गई ।

"क्या सोच रही हो ?

अन्नदाता ?"

"लगता है कि तुम किसी विकट द्विविधा में पड़ गई हो ?

"हाँ अन्नदाता आप जानते हैं कि छोटी रानी कितनी चतुर है ? उसको मारना कठिन ही नहीं असम्भव है ।

"मधूलिका सुनता आया हूँ कि दासियाँ अपने स्वामियों के लिए प्राण तक विसर्जन कर देती हैं और तुम ?

"अन्नदाता मैं इसे करने में सर्वथा असमर्थ हूँ ।"

"तुम्हारे मुँह से आज हम यह क्या सुन रहे हैं ?"

बात यह है कि छोटी रानी की प्रतिक्रिया से हमारा सर्वनाश होगा । आप समझते हैं कि इस भयानक षड्यंत्र के बारे में छोटी रानी मौन मूँद कर बैठी है ! मेरी समझ में अभी उनके मस्तिष्क में कैकयी की एका क्रिया होगी । जिस तरह कैकयी की सारी शक्ति भरत को सिंहासन दिलवाने में लगी हुई थी ठीक उसी प्रकार अभी छोटी रानी का ध्यान बड़ी रानी को येन केन प्रकारेण पराजय देने में लगा होगा ।"

तीव्रबुद्धि कुछ क्षण चहलकदमी करने लगा।

मधूलिका ने समीप पड़े कुसुम्भे के प्याले को दीवान जी की ओर बढ़ाते हुए मधुर स्वर में कहा "महाराज! दो रानियों के झगड़े में सहयोगियों का भाग्य-तारा दो ही परिणामों से टकरा सकता है। या तो वे कृपापात्र बन जाते हैं अथवा वे सदा-सदा के लिए मृत्यु की गोद में सुला दिए जाते हैं।"

"मधूलिका! हमने तुम्हें परिणाम सुनने के लिए नहीं बुलाया है। हमने सिर्फ पूछा है कि तुम छोटी रानी को किसी भी तरह मार सकती हो कि नहीं?"

"मैं नहीं मार सकती।"

"तुम्हें प्रयत्न करना होगा।"

कसौटी पर यह

"हम दासी के मुख से यह और यह शब्द सुनने के आदी नहीं हैं।"

"दासी लाचार है।"

"मधूलिका!"

मधूलिका चुप खड़ी रही।

"जाओ यहाँ से और प्रयत्न करो कि तुम्हें सफलता मिले।"

मधूलिका चली गई।

तीव्रबुद्धि विचारने लगा—एक नहीं, दो बातों पर एक साथ विचारने से कोई निर्णय नहीं हो पा रहा है। इसके विपरीत उसकी व्यथा बढ़ती जा रही थी।

वह उन्मना सकपकाया और चहलकदमा।

"रानी ने मुझे जीवन-दान दिया?" वह हठात् बड़बड़ाया। उसकी बड़बड़ाहट रुक गई। वह कुछ व्यवस्थित-सा हुआ। सीने में सुरा-गरलगार[1] पर सर्वव्यापित होते हुए उसने कुसुम्भे का एक घूंट पी

१ शराब।

कंठ से उतारा।

'छोटी रानी ने मुझे जीवन-दान क्यों दिया ?' उसकी समग्र चेतना एक इसी वाक्य पर केन्द्रीभूत हो गई। वह उस प्रश्न में साकार हुआ ढूँढने लगा। उसकी दृष्टि प्रस्तर की प्राचीरों पर इस तरह जम गई थी जैसे वह समझ रहा था कि अभी किसी चमत्कार की भाँति उसके इस प्रश्न का उत्तर इस प्राचीर पर चित्रित हो जायेगा।

'जीवन-दान ! समझा केवल इसलिए कि वह मुझे इतना असमर्थ और लाचार समझती है कि मैं मुक्त होने पर भी कुछ नहीं कर सकूँगा। मैं इतना शक्तिहीन हूँ कि मैं दीवान होते हुए भी छोटी रानी का बाल भी बाँका नहीं कर सकता ? पर उसने मुझे क्या समझ रखा है, मैं उसका समूल नाश कर दूँगा।

तीव्रबुद्धि ने निजि सेवक द्वारा प्रधान सैन्य-संचालक वीर महोधि को बुलाया।

वीर महोधि ने दीवान की आज्ञा मानना अपना कर्तव्य समझा और जब दीवान ने अपना निश्चय महोधि के समक्ष रखा तब महोधि ने उपहास भरी हँसी हँसकर कहा "आपको यह जानकर अत्यन्त दुःख होगा कि छोटी रानी ने अल्पकाल पूर्व समस्त सैन्य-संचालन अपने अधिकारों के अन्तर्गत ले लिया है। मैं तो नाममात्र का सेनापति हूँ।"

"और इतना अपमानित और शक्तिहीन होने के पश्चात भी आप उस पद पर प्रतिष्ठित हैं ?"

"क्या करूँ ?

"इस सिंहासन को उलट नहीं देते ?"

"मैं अधिकारहीन होकर देशद्रोही नहीं बन सकता। पूर्वों से की गई अपनी सेवाओं पर पानी नहीं फेर सकता। इतिहास के पृष्ठों पर अपनी द्रोही व्यक्तित्व की कथा अपमानजनित शब्दों में नहीं लिखाना चाहता। मेरा विश्वास है कि यदि मैं सच्चा हूँ यदि मैंने सच्चाई के साथ राज्य-परिवार की सेवा की है तो मैं कल पुनः अपने पद पर

आसीन हो जाऊँगा।"

तीव्रबुद्धि लाचार पश्चात्ताप-भरी हँसी हँस पड़ा। तलवार से दीवार पर टँगे ढाल के चेहरे पर हल्की चोट करके बोला "सत्ता इस तरह अधिकार में नहीं आती? मृतप्राय होने पर भी सत्ता सत्ता कहलाती है। शत्रु को सदा उससे सावधान रहना पड़ता है। आप यदि अपना खोया हुआ सम्मान पुनः प्राप्त करना चाहते हैं तो विद्रोह कीजिए। छल बल और कौशल से छोटी रानी को परास्त कीजिए।"

महोधि ने लम्बी उसाँस छोड़कर डूबते हुए स्वर में कहा "मैं ऐसा करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। आप मुझे क्षमा करें।"

वह जाने को उद्यत हुआ।

तीव्रबुद्धि ने उसे रोका "सुनो हमारे तुम्हारे मध्य की वार्ता बाहर नहीं जानी चाहिए, नहीं तो "

"आप निश्चिन्त रहिए।"

उसके चले जाने के बाद तीव्रबुद्धि घोर बावला हो गया। उसे ऐसा लगा कि प्रकृति का प्रवाह उसके विपरीत है। जो व्यक्ति उसके एक एक संकेत पर प्राण न्योछावर कर देते थे वे भी आज उससे कतराने लगे हैं।

"लेकिन मैं भी तीव्रबुद्धि हूँ। जो ठान लिया है उसे पूरा करके ही दम लूँगा। या अपना विनाश कर लूँगा अथवा शत्रु का कर दूँगा।"

वह बड़ी रानी के यहाँ पहुँचा।

बड़ी रानी चिन्तित-सी उद्विग्न अवस्था में बैठी थी। दो-तीन परिचारिकायें चाँदी की डंडों के पंखे झल रही थीं। रानी ने अपनी मलमल की धोती पहन रखी थी और कंचुकी जिससे उसकी कमर का आधा भाग दिखाई देता था। माथे में चमकती हुई बिन्दी थी और गले में सोने की जंजीर। उसमें पायली का चित्र लगा हुआ था। बाजुओं में नाहर-मुख सोने के सुन्दर कड़े। अँगुलियों में कई प्रकार की अँगूठियाँ। एक अँगूठी तो लाल जड़ाऊ हीरों की थी।

तीव्रबुद्धि ने दासी द्वारा अपने आगमन की सूचना दी। दासी पुनः आकर तीव्रबुद्धि को सम्मानसहित बड़ी रानी के पास ले गई।

रानी ने उसे बैठने का संकेत किया।

तीव्रबुद्धि ने बैठते ही धीरे से कहा "आपका स्वास्थ्य ?"

"तन अच्छा है पर मन बहुत ही खिन्न है। दीवानजी छोटी रानी ने सबको मोहित कर लिया। वह स्त्री न होकर मोहिनी रूप है। अपने नेत्रों से सबको बांध रही है। छोटे से लेकर बड़ा अधिकारी उसकी आज्ञा के विरुद्ध चलने को तैयार नहीं है और हम अस्तित्व विहीन होकर चल नहीं सकते। अधिकार की क्षुधा हमें भी सताती है।"

तीव्रबुद्धि निराशा से बोला "हम निरुपाय हैं महारानी सा ! आज उत्सव हो रहा है। नृत्य संगीत के सरोवर में जब सारा प्रासाद गोते लगा रहा है तब हम इस अन्धेरे में अपने दुर्भाग्य को कोस रहे हैं ?

"भाग्य की बात है !

"नहीं महारानी सा हमें कुछ करना अवश्य होगा !"

"हम कुछ भी नहीं कर सकते। न छोटी रानी को मार सकते और न ही हम सत्ता पुनः हथिया सकते हां एक उपाय और है ?"

"क्या ? तीव्रबुद्धि ने उत्साह से पूछा।

"यदि उसके लड़की हो जाय और मेरे लड़का "

"ऐसा भी हो सकता है। तीव्रबुद्धि के शब्द-जाल में आशा फूट रही थी। उसकी भंगिमा से ऐसा लग रहा था कि जैसे उसने हठात् कोई हल पा लिया है।

"कैसे हो सकता है ?" व्यग्रता से बड़ी रानी ने पूछा।

"यह भी हो सकता है कि उसका गर्भ ही गिरा दिया जाय। महारानी सा छोटी रानी पुनः निस्सन्तान हो जा सकती है।"

"यदि ऐसा संभव है तो हमें कोई अपमानित नहीं कर सकता। तीव्रबुद्धि तुम इसका प्रबन्ध करो।"

"मैं कल प्रातः ही आपको पूरी जानकारी दूँगा।" तीक्ष्णबुद्धि चला गया।

• • •

उत्सव के बीच में ही 'विप्र' ने छोटी रानी को यह समाचार सुनाया कि अभी अभी अपनी बाँदी गोधूलि ने आकर निवेदन किया है कि बड़ी रानी आपके उत्सव को पूर्ण होने के पूर्व ही समाप्त करना चाहती है।

छोटी रानी ने धीमे से कहा "उत्सव को समाप्त होने दो फिर इस पर विचार किया जायेगा। गोधूलि को बड़ी आज्ञा दे दो कि हर छोटी से-छोटी बात को ध्यान से सुने और हमें सूचित करती रहे।"

विप्र चला गया। उत्सव में राजस्थान की ढोलनियाँ आई हुई थीं। राजस्थान के अमर लोक-गीतों का रसास्वादन करने के लिए सभी सामन्त और सरदार उपस्थित थे। एक ढोलन झूमती हुई गा उठी—

"रल बादल बीच चमके जी तारा।"

दूसरी ढोलन ने घूमकर गले का एक चक्कर निकालकर आगे की पंक्ति को गाकर बढ़ाया—

सांझ पड़ियो दिन जावे जी प्यारा!

दोनों का सम्मिलित स्वर गूँज उठा—

"वह रे कुमार बाँके रसिया!"

ढोलक मृदंग थाली आदि एक साथ बज उठीं।

वातावरण में प्रसन्नता का सागर लहरा रहा था। उपस्थित सब सुख-सी सुख-समीर का आनन्द ले रही थीं। छोटी रानी सहज भरी दृष्टि से वीर महेन्द्र को देख रही थी। उसकी दृष्टि भंगिमा से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था जैसे वह कह रही थी—देखा मेरा चक्र! दीवान और बड़ी रानी दोनों हाथ-पर-हाथ रख बैठे रह गये।

और महेन्द्र ने मुस्करा कर दिया जैसे वह कह रहा है कि रोवणी रोवती और पावणाँ जीमताई[1]।

---

1 रोनेवाले रोते रहते हैं और खानेवाले खाते रहते हैं।

महाराजा बर्रामर्दन कसूम्बे के नशे में डूबे हुए थे। कभी-कभी उनकी दृष्टि अचानक छोटी रानी के चमकते मुख की ओर उठ जाती थी। उस दृष्टि में मुख की पुरानी-पुरानी शाश्वत ज्वाला थी जो कभी-कभी वासना के झोंके से दहक जाती थी।

ढोलनियों का स्वर तेज हुआ—

म्हो रसिया थी थाँने क्यूं बिसमाया
सौड़ी रै बावड़ी बड़ी ए बिसमाया
काँई रै गुमान करै रसिया "

गीत की पंक्तियों पर छोटी रानी को हँसी आ गई—म्हो प्रीतम आपको किसने मोह लिया है? अरे आप छोटी के यहाँ जाते-जाते बड़ी के यहाँ चले गये?

पर छोटी रानी ने अपने आप मन से कहा छोटी के होते बड़ी महाराज को क्या दिखला सकती है?

माथे रो रस नैणा लीयो
नैणाँ रो रस पन्नामाळ पीयो
काँई रै गुमान करै रसिया
कानाँ रो रस लड़ियाँ की लीयो
लड़ियाँ रो रस पन्नामाळ की लीयो
काँई रै गुमान करै रसिया

नृत्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

महाराजा ने प्रसन्न होकर एक सोने का गहना उन दोनों राजस्थानी ढोलनियों को दिया। उन्होंने उनकी चिरायु की कामना की।

उपस्थिति में भारी मूकता के पश्चात् एक हलचल-सी हुई। गीत की आलोचना प्रत्यालोचना हुई। तभी आँगन में एक वृद्ध राजसी पोशाक में डगमगाता आया। उसके बाल श्वेत थे—रुई के समान।

सभी उसे प्रश्नसूचक भरी दृष्टि से देखने लगे।

बूढ़ा पश्चाताप से भरा जा रहा था। बार-बार वह तलवार को

देखकर क्रोधित हो जाने का अभिनय करता था। थोड़ी देर वह अपने समस्त अंगों को देखता रहा और अंत में रोदन-भरे स्वर में बोला

"चाम पुराणो मन नयो नहीं वही सभाव
भरी जवानी बावरी एक बार फिर आव।"

एक वीर पुरुष जिसने अपने यौवन-काल में शत्रुओं के दमन और अपने नगर की शान्ति-सुरक्षा के लिए अपने यौवन का आनन्द ही नहीं लूटा वह व्यतीत यौवन के चले जाने पर कितने मार्मिक स्वर में चिल्लाता है—"यह चमड़ी जरूर पुरानी हो गई है पर यह मन नवयौवन नया है और इन नयनों का स्वभाव भी वही है अतः ए मेरे पागल यौवन तू एक बार पुनः लौटकर आ जा।"

उसका अभिनय इतना सजीव था कि उपस्थिति में जीवन का संचार हो उठा।

नगाड़ा और बजा—छिड़-छिड़-छिड़ छिन

एक युवती ने प्रवेश किया। वह भी बूढ़ी थी।

उसने एक बार उपस्थिति पर अतृप्त दृष्टि डालकर दृष्टि विखेर किया और आँगन में पल्लू बिछाकर गा उठी—

"जोबन थारो जाएलो, मेलो मनड़ो विछाय।
मूंघी कर-करके देखतो कस्तूरी रे भाव।"

यौवन को कस्तूरी के भाव देखना उपस्थिति को बड़ा प्रिय लगा। सब लोग उसके हास्य भरे अभिनय पर खिलखिलाकर हँस पड़े। बूढ़ा नगाड़ा बजाकर आगे बढ़कर बोला—

"जोबन जाता एक गया मिल में तीन प्रसन
धुरी मिलावण की रमत पर तिरवाहुन सरस।"

एक योद्धा जिसकी उम्र प्रायः कम थी की उस दोहे को सुनकर मस्ती के साथ कह उठा "सूर्यसिंह जी राजस्थानी कवि ने बहुत ठीक कहा है कि यौवन चला भी जाता पर धरती पर पड़ना रही युद्ध-कौशल तथा शत्रुओं के सिर को काटने की ताकत अब चली गई।"

इसके बाद नृत्य का दौर रहा ।

युवा और युवती नृत्य-कला में कुशल जान पड़े । उन्होंने दर्शकों को मोह लिया । इसके बाद स्त्री मुसकराकर गा उठी—

"जोबन गयो तो जाण दे सिर सूं टली बलाय
बळी बळे री बळसणो, गो दुख छूटो न जाय[1]"

और पुरुष ने भी आगे बढ़कर कहा—

"मुड़ गी मस्ती जाइयो मतवालापण सूं छूट,
चालो गयो जोबन गयो प्रीत पुराणी टूट[2]"

दूसरे पक्ष का अभिनय भी खूब सजीव रहा । लोग राजस्थानी लोक-कला से प्रभावित हुए । दोनों पात्र भीतर की ओर आये ।

उपस्थिति ने हर्ष-ध्वनि की ।

दोनों पात्र पुनः बाहर निकलकर आ गये ।

इस बार दोनों एक साथ बोले—

"लोयणियाँ तरुणी रमण गय गंजण मय मत्त
अंग्गण फिर आव रे कई जीवण रा तत्त ।"

एक श्रोता इसे सुनकर झूम उठा क्या कहा है हे तरुणी से रमण करनेवाले हाथी के मद को भंजन करनेवाले अनेकों शत्रुओं को चट्टान के सदृश रोकनेवाले ए यौवन एक बार फिर आ । वाह रे कवि और वाह रे कलाकारो धन्य धन्य !

यह तो गाना समाप्त हो गया ।

हर्ष-ध्वनियाँ और तुमुल प्रसन्नता-भरा घोष ।

दोनों कलाकारों को खूब सम्मानित किया गया ।

---

१ यौवन चला गया अच्छा ही हुआ, सिर से बला टल गई । इस यौवन के बार-बार चढ़ जाने के दुख से तो बच गये ।

२ मुड़ गई वा मस्तियाँ चली गईं मतवालापन से छूटे, यौवन चला गया, अच्छा ही हुआ पुरानी प्रीत भी खत्म हो गई ।

नृत्य एक यौवन में उन्मत्त यौवन ही बनी थी। उसके नृत्य के कृत्रिम भय पर महाराज स्वयं अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उस उसी दिन अपने राज्य की विजय यौवन का पद प्रदान किया।

उत्सव की समाप्ति के बाद छोटी रानी और महाराज राजसे की ओर पधारे।

विप्र अपने निवास-स्थान की ओर जाने को उद्यत हुआ। मेनका ने उसे रोका।

एकान्त!

मेनका ने गम्भीरता से कहा "प्रातःकाल नगर के प्रतिष्ठित ओझा त्रिभुवन ठाकुर को हमारे कक्ष में भेजना हम चाहते हैं कि बड़ी रानी का कोई जन्त्र-मंत्र हम पर और हमारी किसी वस्तु को प्रभावित न करे।"

विप्र ने 'हूँ' कहकर प्रस्थान किया।

• • •

विदूषक संकटमोचन अल्पकाल के लिए नितान्त मौन रहा। उसकी झील गहरी जैसी आँखों में व्यथा का सागर लहरा उठा। उसने हाथों को अपने मुँह पर व्यर्थ ही फेरकर उसने कथा को आगे बढ़ाया—

रात का गहरा सन्नाटा संसार पर छा चुका था। गहरी नीरवता स्वयं भय को उत्पन्न कर रही थी। कहीं-कहीं उल्लू की घों-घों और श्वान की गर्जन सुनाई पड़ जाती थी।

तीव्रबुद्धि इस भयानक रात में मरघट की ओर भागा चला जा रहा था।

मरघट!

मानवी तन के जलने की दुर्गन्ध से विषाक्त वात और भयानक।

तीव्रबुद्धि वहाँ आकर अकस्मात खड़ा हो गया। उसका मन भावनाओं से कांप रहा था। हृदय की धड़कन आतुरता के कारण बहुत तेज हो गई थी।

श्मशान पर निविड़तम अँधेरा था।

जली हुई लाशें अकस्मात् चटककर उसके अन्तर में भय जगा देती थीं।

तीव्रबुद्धि ने उस अन्धकार में एक अघोरी को देखा। वह अघोरी अपनी तांत्रिक शक्ति से एक अधजली लाश पर बैठा किसी मंत्र की सिद्धि प्राप्त कर रहा था।

उसके कंठ-स्वर से बड़े विचित्र मंत्रों का उच्चारण हो रहा था। तीव्रबुद्धि कई क्षण चुपचाप खड़ा रहा और अंत में जब अघोरी बिलकुल चुप हो गया तब बोला 'महाराज'!

अघोरी की दो आँखें उस अंधकार में अंगारों की भाँति चमक उठीं। कर्कश स्वर में बोला "मूढ़ पामर शूद्र तूने मेरी साधना में विघ्न डाल दिया अब मैं तेरी लाश पर अपने इस नये मंत्र की सिद्धि प्राप्त करूँगा।

और उस अघोरी ने तुरन्त तीव्रबुद्धि को धरती पर पटक दिया। तीव्रबुद्धि अर्धमृत-सा पड़ा रहा। उसके मुँह से केवल इतना निकला, "महाराज मैं इस नगर का दीवान तीव्रबुद्धि हूँ।"

"तू इस नगर का दीवान है। मूर्ख तू यहाँ क्यों आया है? जानता नहीं यह हमारे महामंत्रों को सिद्ध करने का स्थान है। चमत्कार-पूर्ण जीवन के प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक के साधन यहीं से प्राप्त होते हैं। बता तू यहाँ क्यों आया है?"

"महाराज मैं आपकी शरण में आया हूँ।"

"हमारी शरण में बता क्यों?"

"बड़ी रानी छोटी रानी के पेट का गर्भ गिराना चाहती है।"

"बस इतनी सी बात?

"वह चाहती है कि वह भी गर्भवती बने और यह सब आपकी कृपा से ही हो सकता है प्रभु!"

"हो सकता नहीं हो गया।" कहकर उस अघोरी ने जोर से मंत्र का उच्चारण किया।

तीव्रबुद्धि ने देखा—वह अधजली लाश यकायक उठकर बोलने लगी

है— 'बड़ी रानी का कार्य शीघ्र ही पूरा होगा वह माँ बनेगी और बेटे की माँ।

तीव्रबुद्धि मारे भय के अचेत हो गया।

जब उसने अपनी आँखें खोलीं तो उसने अपने समीप प्रकाश पाया। देखा कि वह अघोरी अत्यंत तेजवान है और केवल एक लंगोट पहने हुए है।

उस अघोरी ने उसे जाने की आज्ञा देते हुए कहा 'कल तू बड़ी रानी को हमारे पास लेकर आना।"

तीव्रबुद्धि ने काँपते हुए कहा "जो आज्ञा।"

'और यदि न लाया तो ?"

तीव्रबुद्धि ने उसके चरण स्पर्श कर लिए और उसे विश्वास दिलवाया कि ऐसा कभी नहीं हो सकता।

उसके चले जाने के बाद अघोरी ने एक जोर का अट्टहास किया।

संकट मोचन ने रामू, ललता और चम्पू पर दृष्टिपात किया। वे तीनों बिलकुल गंभीर थे। उनके नेत्रों में उत्सुकता के साथ-साथ आशंका भी तैर रही थी।

"फिर क्या हुआ ?" ललता ने हठात् पूछा।

दूसरे दिन बड़ी रानी रात्रि के अंधकार में उस अघोरी के पास गई। अघोरी ने तीव्रबुद्धि को वहाँ से वापस भेज दिया। उसे आज्ञा दे दी कि वह प्रभात होने से कुछ काल पूर्व आकर बड़ी रानी को ले जाए।

तीव्रबुद्धि के चले जाने के साथ ही अघोरी ने अपने तीन बार चमत्कार बड़ी रानी को दिखाये। बड़ी रानी भय और घृणा से अचेत हो गई। एक चमत्कार में एक राक्षसी एक बच्चे को खा रही थी। उस अघोरी ने बड़ी रानी को बताया कि यही बच्चा तेरी कोख में आवेगा।

रानी जब सावधान हुई तो उस अघोरी ने एक कूंडे[1] में मांस का

---

१ मिट्टी का चौड़े मुँह का गोल बर्तन।

खोपड़ा लाल कपड़ा एक हड्डी का टुकड़ा मूँग प्रसाद आदि सामान देकर कहा— 'दिगम्बरी होकर इसे उस शव पर रख आ।"

'दिगम्बरी ?" रानी ने चौंककर कहा। उसके दोनों हाथ उसके वक्षस्थल पर रुक गये।

'हाँ मंत्रों की सिद्धि का यही मार्ग है। सुन रानी यदि तू ने हमारे वचनों का जरा भी उल्लंघन किया तो जानती हो कि तेरे तन से कोढ़ फूट निकलेगा। जा दिगम्बरी होकर उसे वहाँ पर रख आ।"

रानी काँपते-काँपते दिगम्बरी हुई। वह लज्जा से मरी जा रही थी। उसने अपने हाथों से उस जूड़े को उठाया।

ठहर!" उस अघोरी ने उसे रोका।

बड़ी रानी ठहर गई। अघोरी ने एक बार पिपासी की तरह रानी के उस रूप को देखा जैसा रूप लेकर उसने इस पृथ्वी पर अपना प्रथम क्रन्दन किया था।

"ले इसे पी ले।" अघोरी ने एक मिट्टी के बर्तन में मटमैले रंग का पानी दिया "इसके पान के पश्चात तुझे भय नहीं लगेगा। जा और इसे उस शव पर रख आ।"

बड़ी रानी उसे लेकर उस शव की ओर बढ़ी। अघोरी उसके साथ था। रानी ने जैसे ही उस जूड़े को माथ पर रखा वैसे ही उस अघोरी ने कहा, 'सात फेरे लगा।"

बड़ी रानी ने उस शव के चारों ओर सात फेरे लगाए। फेरे लगाने के बाद अघोरी ने रानी को अपने घुटने पर बैठ जाने को कहा। रानी उसके घुटने पर बैठ गई।

• • •

जब रानी पुनः प्रासाद लौटी तब उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वह आत्मग्लानि में मरी जा रही थी। उसके चेहरे पर जो पूर्ण नारी की अभिन सौम्यता ओज और अहम् था वह लुप्त हो गया था। यद्यपि उसके नैनों से अश्रु भी छलछला आते थे।

वह शय्या पर आकर गिर पड़ी । दासियों ने उसका जी बहलाना चाहा पर उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि उसे एकांत चाहिए ।

एकांत !

और अतीत के वे चमत्कारपूर्ण दिन !

अघोरी ने कहा — चिंता की बात नहीं है प्रिये छोटी रानी अपनी संतान का भरण स्वयं करेगी । तू माँ बनेगी — बेटे की माँ — ! तेरा वियोग पूरा होगा ।

बड़ी रानी ने सांत्वना की साँस ली ।

उसने जो पाप किया उसे कौन जानता है ? अज्ञात पाप सम्मान और प्रतिष्ठा का घातक नहीं होता ।

रानी इन्हीं उधेड़बुनों में उलझती हुई सो गई ।

प्रभात हो गया था ।

पर रानी के मन में घोर अन्धकार व्याप्त था ।

• • •

अघोरी के फन्दे में आ जाने के बाद बड़ी रानी उसे अपना तन मन और धन बार-बार अर्पण करने लगी ।

छोटी रानी ने अपनी सजगता को विशेष व्यापक कर लिया । यद्यपि उसे मंत्रों पर विश्वास नहीं था तो भी उसने ज्योतिष से कई सुरक्षा के मंत्र के टोटके बनाकर पहन लिए ।

तीक्ष्णबुद्धि का पुत्र उसे ही खाने लगा । बड़ी रानी अब पूर्ण रूप से अघोरी की हो गई थी । तीक्ष्णबुद्धि को राज्य-लिप्सा छटपटाने लगी ।

और एक दिन उसने तय किया कि वह उस अघोरी की हत्या कर देगा । वह ऐसा तुच्छ और पराधीन जीवन व्यतीत नहीं कर सकता । वह छल से उस अघोरी को समाप्त करके ही शांति लेगा ।

दोपहर ।

उमसी चिलचिलाती धूप और उष्ण पवन ।

अचानक तीक्ष्णबुद्धि बड़ी रानी के महल में आया । बड़ी रानी मधुर

पलंग पर अर्धशायित थी।

तीव्रबुद्धि आजकल उसे प्रणाम आदि नहीं करता था। श्रद्धा और भक्ति दोनों उसके अन्तर से आजकल कम हो गये थे। वह जानता था कि रानी का तन और मन पाप के पथ से इतना लथपथ हो चुका है कि वह उसके समक्ष आँखें उठाकर बात तक नहीं कर सकती।

अशिष्टता के साथ उसने कक्ष में प्रवेश किया। हाथ का संकेत करके उसने कहा 'एकांत।'

सब दासियाँ सिर झुकाकर चली गईं।

"रानी प्रणाम।"

"बैठो तीव्रबुद्धि।"

तीव्रबुद्धि बैठ गया।

बड़ी रानी ने तनिक सावधान होते हुए कहा "तुम्हें जानकर अत्यंत प्रसन्नता होगी कि मैं माँ बननेवाली हूँ।"

"बधाई है।"

'अब देखती हूँ कि छोटी रानी मुझसे बचकर कहाँ जावेगी? अभी तो मैंने बीज आरम्भ किया है और अब उसके बीज का क्या जड़ का नाश करके दम से सोऊँगी।'

तीव्रबुद्धि तरस-भरी हँसी हँसा "मूर्ख हो तुम! छोटी रानी आँखें मूँदकर नहीं सोई हुई है। उसके बीज का नाश इतनी सहजता से नहीं हो सकता जितनी तुम समझती हो।"

बड़ी रानी ने शय्या पर करवट ली। यद्यपि वे धीरे-धीरे कहने लगी "मैं चाहूँ तो एक दिन इस सिंहासन पर भी अधिकार कर सकती हूँ।"

तीव्रबुद्धि झल्ला उठा। बड़ी रानी की यह भावना उसे पसन्द नहीं आई। रानी मादक पेय का चषक उठाकर स्वयं पीने लगी। अशिष्टता की सीमा पर तीव्रबुद्धि का सम्मान चीख उठा "तुम उस चकोरी के संकेतों पर छोटी रानी क्या इस राज्य का भी सर्वनाश कर सकती हो। मुझे

यदि ऐसा प्रतीत होता तो मैं उस छलिये अघोरी से तुम्हारी भेंट ही नहीं कराता।"

"तीव्रबुद्धि मैं अपने गुरु के विरुद्ध अपमानसूचक शब्द सुनने की आदी नहीं हूँ।"

"तुम उस तांत्रिक को गुरु कहती हो जिसने तुम्हारा तन मन धन सभी कुछ छल लिया है। तुम्हें देवी से पतिता और नारी से पाषाणी बना दिया है। महारानी जी! अब भी उसके वीभत्स और घृणित आकर्षण से मुक्त हो जाइये और

बड़ी रानी घृणा से जलती हुई बोली "और मैं तुम्हारे चक्र में फँस जाऊँ! तीव्रबुद्धि! प्रतिदीप की आग की ज्वालाएँ व्याकुल होकर नहीं चलती वे एक ही दिशा में ऊर्ध्वमुखी होकर चलती हैं ताकि उचित लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। मुझे छोटी रानी ।"

तीव्रबुद्धि तेज स्वर में बोला "पहले छोटी रानी फिर महाराज फिर सिंहासन और उसके बाद धर्मपुर का भोग विलास के हामी तांत्रिकों का शासन विलास का सागर, मानव भोग लिप्सा और पराजयता! ऐसा मैं कभी भी नहीं होने दूँगा।" तीव्रबुद्धि आवेश में काँपने लगा। उसके नेत्रों में पीड़ा-जनित आँसू छलछलाये। स्वामी की श्रद्धा से अनुरक्त तीव्रबुद्धि सत्य का अनुरोध करते-करते आत्मा की वह ममता को भी भूल गया जो थोड़ी देर पूर्व उसके मानस में घमण्ड की तरह उठ रही थी।

बड़ी रानी आहत नागिन की भाँति फुफकार उठी। वह उस तरह तड़प रही थी जिस तरह कोई भयानक फुफकारती किसी शिला के नीचे दब जाती है और भयानक फुफकार करती है।

"तीव्रबुद्धि इससे पहले कि मैं तुम्हें धर्मद्रोहिता और अत्याचार के अपराध में बंदी बनवाऊँ तुम यहाँ से चुपचाप खिसक चले जाओ। यह मेरी आज्ञा है कि तुम यहाँ से चले जाओ।"

तीव्रबुद्धि फिर भी नहीं गया। वह आग भरी दृष्टि से बड़ी रानी

को देखने लगा जो कल तक महाराज और उसके सम्मान में झुकी रहती थी और आज चरित्रहीन होकर भी गर्व रही है। उसने पराजित मंत्री की तरह टूटते स्वर में कहा 'बहुत संभल के पाँव उठाना कहीं ऐसा न हो कि एक दिन इस अघोरी-दल के चमत्कारपूर्ण तन्त्र-मंत्रों के भयाक्रान्त पीड़ित मार्ग में तुम अपना सर्वनाश कर लो।

तीव्रबुद्धि चला गया।

बड़ी रानी बहुत समय तक शय्या पर निढाल पड़ी रही। आत्मा की कोमल भावनायें उसके अन्तराल के मिथ्या आवरण पर उभर-उभर कर उसे इतना अशान्त बनाने लगीं कि उसे अपने जीवन में सिवाय अन्धकार के कुछ सूझ ही नहीं रहा था। अघोरी ने उसकी नारी-सुलभ भावनाओं को समाप्त करके उसे इस महामंत्र की पूर्ण-अपेक्षा सिखा दी थी कि जीवन एक आनन्द है और आनन्द की प्राप्ति ही उसका परम सुख तथा सफलता है। उसे इतना नवनीत और आशक्ति कर दिया था कि अघोरी के सिवाय किसी की आज्ञा मानना उसे स्वीकार नहीं था। एक बार महाराज ने उसे टोका भी था। तब वह सिंहनी की तरह गर्जकर बोली 'यदि आपने मेरी साधना में विघ्न डाला तो परिणाम अच्छा नहीं होगा। मैं केवल आपकी सन्तान के लिए कठोर तपस्या कर रही हूँ।

धर्म-भीरु और तान्त्रिकों की चमत्कारिक माया से परिचित धर्मवर्द्धन विवशता का घूँट पीकर रह गये।

बड़ी रानी ने तब देखा कि उसकी सम्पत्ति से वह अघोरी कई शिष्य रखने लगा है। सीमा पर स्थित उस गहन गह्वर में हर रात विलास का संसार सजता है और वह उस भोग की मात्र तरणी है जिसे वह अघोरी कृपा-पात्रा समझकर प्यार करता है।

बड़ी रानी की आँखें सजल हो उठीं। वह तकिये में मुँह छिपाकर सिसक पड़ी।

• • •

तीव्रबुद्धि ने अघोरी के विनाश का प्रण कर लिया। निःसहाय होकर

वह पुनः छोटी रानी के पास आया। विप्र ने उसे तोरण द्वार पर ही रोक दिया और अपनी रानी की आज्ञा लेने वह अन्तःपुर में चला गया। लौटकर उसने तीक्ष्णबुद्धि से कहा "आप भीतर आ सकते हैं।"

तीक्ष्णबुद्धि छोटी रानी के समीप गया। छोटी रानी प्रभु की प्रार्थना में निमग्न थी ऐसा वहाँ के वातावरण से प्रतीत हो रहा था। चन्दन के छींटे यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। धूप से कक्ष सौरभमय था।

छोटी रानी ने उसे सम्मान-सहित आसन पर बिठाया। उसके समक्ष प्रसाद की थाली रखी। उसमें से कुछ अंगूर उठाते हुए तीक्ष्णबुद्धि जिज्ञासा से बोला, "रानी मां! बड़ी रानी के कुचक्रों से आप परिचित हैं न?"

छोटी रानी हँस पड़ी "मैं सदा जागृत रहती हूँ प्रगाढ़ निद्रा मुझे पसंद नहीं है।

"फिर तो आप यह भी जानती होंगी कि बड़ी रानी ने अपना तन मन धन ..."

"नारी का चरित्र विचित्रताओं से भरा है। मैं समझती हूँ कि इस धर्मपुर की सत्ता आपसी कलह में समाप्त हो जायेगी। क्यों न आप जैसा चतुर दीवान प्रत्येक क्षण मन के दाँव फेंकता रहता है। मधूलिका मधूलिका सुनो तुम्हारे स्वामी आये हैं। आओ अभिवादन करो।"

मधूलिका ने निर्भयतापूर्वक कक्ष में प्रवेश किया।

अभिवादन के बाद वह नतमस्तक खड़ी हो गई।

"आपने इसे हमारे कक्ष में भेजकर इस बात का पता लगाना चाहा कि हम क्या षड्यंत्र रच रहे हैं? दीवानजी मधूलिका बहुत ही प्रिय दासी है, वह बेचारी इस कार्य में नितान्त असफल रही।"

तीक्ष्णबुद्धि संकोच से कुछ बोल नहीं सका।

मधूलिका पुनः लौट गई।

छोटी रानी ने मधुर स्वर में कहा "जहाँ तक षड्यंत्र और चातुर्य का प्रश्न है वहाँ तक मैं पारंगत हूँ। मुझे पराजित करना कठिन ही नहीं असम्भव है। लेकिन मैं रक्त-पिपासु नहीं हूँ। जहाँ रक्तार्पण और

युद्ध का प्रश्न आता है, वहीं मैं विमूढ़ और जड़ हो जाती हूँ। प्राणी द्वारा प्राणी की हत्या करना मेरे लिए संभव नहीं।"

"पर रानी मां जब तक उस अघोरी को परलोक नहीं भेजा जायेगा तब तक अनंगपुर सुरक्षित नहीं हो सकता।"

"मैं किसी की हत्या नहीं करा सकती।"

"फिर ?"

"यह काम आप कर सकते हैं पर मेरी आज्ञा से नहीं अपनी आत्मा की आज्ञा से।"

"बड़ा विचित्र सिद्धान्त है। कूटनीति में इतनी चतुर होने पर यह दुर्बलता क्यों ?

'संस्कारों की बात है, शोणित-सम्बन्ध है।'

तीव्रबुद्धि अभिवादन करके आ गया।

'भोगी रानी बड़ी विचित्र है। और फिर वह मुस्कराकर कह उठा "अनंगपुर विचित्रताओं का केन्द्र हो गया है। विचित्र पात्र ! विचित्र अभिनय संघर्ष !

और अन्त में तीव्रबुद्धि ने निश्चय किया कि वह अघोरी को समाप्त करेगा ही।

• • •

निशिथ का पहर।

चाँद नदारद।

तारे ऐसे झिलमिला रहे थे जैसे मदमाती पलकें खुलती और बंद होती हैं। चाँद था नहीं इसलिए अन्धकार का साम्राज्य एकाधिपत्य होकर अपने स्वामीत्व का बोध कर रहा था।

महाराज दर्पवर्धन कमुम्बे के नशे में मग्न शय्या पर दो बांदियों के संग क्रीड़ा कर रहे थे। क्रीड़ा करते-करते थक गये तो निद्रा ने उन्हें अपने अंक में भर लिया।

घड़ियाल बजा।

दो उग्र सैनिकों ने महाराज के कक्ष में प्रवेश किया। उनके हाथों में खड्ग थे जो रक्त रंजित थे। रक्त-सने खड्गों से प्रतीत होता था कि वे अभी-अभी मानव रक्त से अपनी जघन्य पिपासा को शांत करके आये हैं।

दोनों सैनिक कुछ देर तक वय महाराज का कांतिहीन आनन देखते रहे। इसका मूर्त और उसका मुख।

एक ने तलवार उठाई।

दूसरे ने रोका "क्यों मारते हो ?"

"बड़ी रानी की आज्ञा है।"

"यह वृद्ध !"

"तुम नहीं जानते हमारी प्रत्येक गति-विधि का बड़ी रानी को ज्ञान हो रहा है। वह मंत्रों की अधिष्ठात्री है। इस प्रकार की अवज्ञा और विद्रोह भरा स्वर मुँह से निकालोगे तो तुम भी कुत्ते की मौत मारे जाओगे।"

मुझे इस बूढ़े पर दया आती है।"

दया के देवता ! बड़ी रानी की क्रूरता तुम्हीं पर बरसा देगी। मारो "

"मैं नहीं मार सकता।"

"अच्छा तुम विद्रोह करना चाहते हो। करो पर मैं अपने प्राणों को व्यर्थ नहीं गँवा सकता। मैं अभी "

तभी धर्मवर्द्धन के नेत्र खुल गये।

उन्होंने अपने दोनों ओर दो सशस्त्र सैनिकों को देखकर ज़ोर से कहा तुम कौन हो ?"

एक ने तलवार उनकी छाती पर रख दी "चुप हो जाओ महाराज आपके का प्रयत्न व्यर्थ है। हम आपकी हत्या करने के लिए आए हैं।"

"मेरी क्यों ?"

"बड़ी रानी की आज्ञा है।"

"मेरी पत्नी की आज्ञा है झूठ तुम झूठ बोल रहे हो !"

'तुम सच बोल रहे हो, महाराज आप मरने के लिए तैयार हो जाइये। एक ने टूटते स्वर में कहा।

"तुम मुझे मारोगे ? अपने महाराजा को, मैं कहता हूँ कि तुम सब चले —"

दो तलवारें एक साथ दर्पमर्दन के वक्ष में घुसीं और पीछे से बाहर आ गईं।

शोणित का सागर शय्या पर लहरा उठा।

महाराज ने पल भर के लिए भयभर आँखों को खोला। उस दृष्टि में गहरी घृणा असहायता और क्षोभ भरा था। दूसरे पल उनका सिर झुक गया।

उसी रात छोटी रानी की भी हत्या कर दी गई। अपनी एक दुर्बलता के कारण कि मैं किसी की हत्या नहीं कर सकती छोटी रानी ने अपना विनाश कर लिया। केवल सुरक्षा सफल राजनीति नहीं।

बड़ी रानी निष्कंटक हो गई।

विदूषक संकटमोचन के चेहरे पर घृणा भर आई। जनता का चेहरा स्याह हो गया पर जम्बू तनिक उत्तेजित होकर कहने लगा "कुछ प्राणियों के अन्तर में महा अपराधी प्रवृत्तियाँ छिपी रहती हैं जो अपना अनुकूल वातावरण पाकर नग्न हो जाती हैं। बड़ी रानी वास्तव में दुष्ट प्रकृति की थी लेकिन प्रतिकूल वातावरण ने उसकी दुष्टता को दबा रखा था।"

विदूषक ने कहा, "गम्भीर बातें मैं नहीं समझ सकता। मैं सत्य को सत्य की तरह रख सकता हूँ।

महाराज मारे गये, छोटी रानी की हत्या कर दी गई। उसके पेट का नया शिशु बिना प्रथम क्रन्दन किये ही सदा के लिए गूँगा कर दिया गया।

पर दीर्घबुद्धि ?

दीर्घबुद्धि प्राणों का मोह छोड़कर इसी ओर लग गया कि वह

तक वह उस अघोरी को समाप्त नहीं कर देता तब तक उसके प्राणों की सुरक्षा नहीं। अतः उसने उसी रात भावुकता में मस्त अघोरी को मार दिया पर..."

"पर क्या ?" रामू और जनता एक साथ पूछ बैठे।

"पर यह कि बेचारा तीव्रबुद्धि अपने आपको नहीं बचा सका। अघोरी को मारकर वह प्रासाद की ओर महाराज को यह समाचार सुनाने के लिए भागा जा रहा था कि आपकी हत्या आज की जानेवाली है कि रास्ते में उसका घोड़ा एक चट्टान से टकरा गया और तीव्रबुद्धि अपनी लालसा को मन-ही-मन में लेकर मर गया।

सवेरा हुआ।

धर्मपुर पर बड़ी रानी का शासन प्रारम्भ हो गया।

जनता महाराज की हत्या से क्षुब्ध और क्रोधित थी पर सैनिकों का दमन उसे शान्त किए हुए था।"

• • •

विदूषक ने एक लम्बी श्वास ली "सिंहासन बदल गया और बदल गये उसके दावेदार! कल की पतिव्रता भारतीय कोमल हृदय पत्नी आज धर्मपुर की भाग्य विधायिका पति-हत्यारिन और नृशंस बन गई।

अघोरी की मृत्यु ने उसे और निडर कर दिया। वह अपनी इच्छानुसार धर्मपुर पर शासन करने लगी।

धीरे-धीरे विलासिता धर्मपुर के जीवन में घुसने लगी। राज्य का कोष विलासिता के लिए उपयोग किया जाने लगा। स्त्री-पुरुष सभी राग रंग में डूब गये।

'खाओ पीओ और आनन्द करो' इस नारे को पसन्द किया जाने लगा। यह नारा महामंत्र की भाँति यहाँ के निवासियों के मस्तिष्क में बस गया।

इस विलासमय वातावरण में बड़ी रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया। उस दिन धर्मपुर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उत्सव नृत्य-गीत

"हम सच बोल रहे हैं, महाराज आप मरने के लिए तैयार हो जाइये।" एक ने दूसरे स्वर में कहा।

"तुम मुझे मारोगे ? अपने महाराजा को, मैं कहता हूँ कि तुम सब चले —"

दो तलवारें एक साथ दर्पमर्दन के वक्ष में घुसीं और पीछे से बाहर आ गई।

शोणित का सागर शय्या पर लहरा उठा।

महाराज ने पल भर के लिए ममप्रद आँखों को खोला। उस दृष्टि में गहरी घृणा असारता और क्षोभ भरा था। दूसरे पल उनका सिर लुढ़क गया।

उसी रात छोटी रानी की भी हत्या कर दी गई। अपनी एक दुर्बलता के कारण कि मैं किसी की हत्या नहीं करा सकती छोटी रानी ने अपना विनाश कर लिया। केवल सुरक्षा सफल राजनीति नहीं।

बड़ी रानी निष्कंटक हो गई।

विदूषक संकटमोचन के चेहरे पर घृणा भर आई। जनता का चेहरा स्याह हो गया पर मम्मू तनिक उत्तेजित होकर कहने लगा "कुछ प्राणियों के अन्दर में महा अपराधी प्रवृत्तियाँ छिपी रहती हैं जो अपना अनुकूल वातावरण पाकर नग्न हो जाती हैं। बड़ी रानी वास्तव में दुष्ट प्रकृति की थी लेकिन प्रतिकूल वातावरण ने उसकी दुष्टता को दबा रखा था।"

विदूषक ने कहा "गम्भीर बातें मैं नहीं समझ सकता। मैं सत्य को सत्य की तरह रख सकता हूँ।

महाराज मारे गये छोटी रानी की हत्या कर दी गई। उसके पेट का नया शिशु बिना प्रथम क्रन्दन किये ही सदा के लिए मूंगा कर दिया गया।

पर तीव्रबुद्धि ?

तीव्रबुद्धि प्राणों का मोह छोड़कर इसी ओर लग गया कि अब

तक वह उस अघोरी को समाप्त नहीं कर देगा तब तक उसके प्राणों की सुरक्षा नहीं। अतः उसने उसी रात मादकता में मस्त अघोरी को मार दिया पर ..."

"पर क्या ?" रामू और जगणा एक साथ पूछ बैठे।

"पर यह कि बेचारा तीव्रबुद्धि अपने आपको नहीं बचा सका। अघोरी को मारकर वह प्रासाद की ओर महाराज को यह समाचार सुनाने के लिए भागा जा रहा था कि आपकी हत्या आज की जानेवाली है कि रास्ते में उसका घोड़ा एक चट्टान से टकरा गया और तीव्रबुद्धि अपनी लालसा को मन-ही-मन में लेकर मर गया।

सवेरा हुआ।

धर्मपुर पर बड़ी रानी का शासन प्रारम्भ हो गया।

जनता महाराज की हत्या से क्षुब्ध और शोकित थी पर सैनिकों का दमन उसे शांत किए हुए था।"

• •

त्रिभुवन ने एक लम्बी श्वास ली "सिंहासन बदल गया और बदल गये उसके दावेदार। कल की पतिव्रता भारतीय कोमल हृदय पत्नी आज धर्मपुर की भाग्य विधायिका पति-हत्यारिन और नृशंस बन गई।

अघोरी की मृत्यु ने उसे और निःशंक कर दिया। वह अपनी इच्छानुसार धर्मपुर पर शासन करने लगी।

धीरे-धीरे विलासिता धर्मपुर के जीवन में घुसने लगी। राज्य का कोष विलासिता के लिए उपयोग किया जाने लगा। स्त्री-पुरुष सभी राग रंग में डूब गये।

'खाओ पीओ और आनन्द करो' इस नारे का बुलन्द किया जाने लगा। यह नारा महामंत्र की भाँति वहाँ के निवासियों के अन्तस में बस गया।

इस विलासमय वातावरण में बड़ी रानी ने एक पुत्री को जन्म दिया। उस दिन धर्मपुर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उत्सव नृत्य-गीत

का ज्वार उमड़ पड़ा। रात को दीपों से सभी नगरवासियों ने अपने गृहों को सजाया। दीपों की पंक्ति आग की बहती हुई सरिता प्रतीत होती थी।

दिन नया उत्साह लेकर आता और रात नया उन्माद!

धरती अपनी धुरी पर घूमती रही।

समय व्यतीत हुआ।

राजकुमारी किशोर हो गई। उसका नाम भी बड़ी रानी ने बहुत ही प्यारा रखा था—गुणवंती!

गुणवती के मनोरंजनार्थ मेरी नियुक्ति हुई। मैं सदा हँसमुख रहता था। उपहास-परिहास मेरा इतना प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ कि वह जन चर्चा का विषय बन गया। हाज़िर-जवाबी और बात बात में बात निकालना मेरे बाँये हाथ का खेल था।

अतः मैं सदा के लिए गढ़ की चहारदीवारी का विदूषक बना दिया गया।

गुणवंती को रोते-रोते हँसा देना ही मेरा कार्य था।

एक विदूषक का और उपयोग हो क्या?

एक बार गुणवती और मैं विलास भवन के प्रकोष्ठ में बैठ थे।

शीत ऋतु थी।

कुहरा पड़ रहा था।

गुणवंती ने सामने बने सरोवर की ओर संकेत करके प्रश्न-सूचक स्वर में पूछा "बाबा इस सरोवर का जल कहाँ चला गया?"

"देख नहीं रही हो कि वह बर्फ बन गया है।"

"बर्फ कैसे बन गया?

"ठंड से।"

तभी हम दोनों ने देखा—

कड़कड़ाती ठंड में दो सैनिक एक तरुण को लोह शृंखला में आबद्ध किए उस सरोवर की ओर ले जा रहे हैं। वह तरुण भय के मारे करुण क्रन्दन कर रहा है। बार-बार जोर से कह रहा है, "मुझे मुक्त कर दो

मुझे मुक्त कर दो। मैं निरपराधी हूँ मुझे मुक्त कर दो।"

पर कौन सुनता उस दरिद्र का क्रन्दन ?

पुण्यवती ने मुझसे पूछा "यह कौन है बाबा ?"

"यह अपराधी है।

"इसने क्या अपराध किया है ?

"सुनते हैं कि इसने राजमाता के चरित्र की आलोचना की। इसने कहा कि राजमाता प्रजा के कोष को व्यर्थ में समाप्त करके महानगर को निकट भविष्य में संकट में डाल रही है।

तभी उन सैनिकों ने उस तरुण को सरोवर में जमी बर्फ पर लेटा दिया।

हृदय-विदारक क्रन्दन छटपटाहट और मृत्यु !

पुण्यवती ने हँसकर कहा "मर गया बाबा ?"

"हाँ बेचारा मार दिया गया।"

उसने मेरा हाथ पकड़कर कहा "बाबा जा तू भी वहाँ सो जा।

मैंने उसे पुचकारते हुए कहा "नहीं बेटा वह बहुत ठंडी है, वहाँ सोने से प्राणी मर जाता है।"

"मर जाता है तो क्या ? जाओ वहाँ सो जाओ।

मैंने उसे समझाया "ऐसा नहीं कहते बेटी।"

"नहीं जाओगे न जाओ " उसने अत्यन्त आग्रह से कहा पर मैं नहीं गया। वह रोने लगी और मैं उसे बहलाने लगा। वह नहीं मानी और रोती ही गई।

संयोगवश महारानी का उधर से आगमन हो गया। उसने आते ही पूछा "पुण्यवती क्यों रो रही है, संकटमोचन ?"

"यह कहती है कि मैं उस बर्फ पर सो जाऊँ। मैंने इन्हें कहा कि राजकुमारी वा वहाँ "

"और तू ने जरा-सी बात के लिए हमारी बेटी के कितने ही अनमोल आँसुओं को बहा दिया। संकटमोचन तू विदूषक है तेरा काम है केवल

हँसाना जानता नहीं था मृणवंती को हँसा।"

मैं सरोवर की ओर चला।

सोच रहा था जैसी माँ है वैसी ही बेटी होगी। साँपिन साँपिन को ही जन्म देगी।

मैं बर्फ पर सोया रहा। मैंने देखा कि मृणवंती को मेरे तड़पने में अतीव आनंद प्राप्त हो रहा है। अचेत अवस्था में मैं राजवैद्य के घर पहुँचाया गया जहाँ तत्परता के साथ मेरा उपचार किया गया। दो-तीन दिनों के बाद मैं तनिक स्वस्थ हुआ। फिर भी मैं पूर्व की पीड़ा को स्मरण करके तड़प जाता था। मेरी नसों का रक्त जम जाता था। मुझे अपने जीवन और स्वभाव के प्रति बड़ा रोष आता था।"

संकटमोचन ने क्षण भर के लिए निर्जीव-सी मूच्छा धारण की। उसकी स्थिर पलकों में दारुण व्यथा लहरा उठी। अचानक सजलता का उफान उसकी स्थिर आँखों में आया जैसे उसे अपने जीवन के प्रति गहरा असंतोष है।

वह अनिच्छा से कहने लगा "विदूषक जीवन का कितना भयानक अभिशाप है कि उसे रोने का अधिकार नहीं।

मृणवंती शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बढ़ने लगी।

किशोर की उमंगें स्वतंत्र होती हैं और जब यौवन आगमन करता है तब उन पर लज्जा का शालीन आवरण छा जाता है।

मृणवंती यवा हो गई।

माँ की कठोरता के साथ उसने अनुपम सौन्दर्य भी पाया। वह सौन्दर्याभिमुख होकर दृप्त होने लगी। उसके रहन-सहन बातचीत और प्रकृति सभी में उसकी धृष्टता-भरा व्यक्तित्व झलका करता था।

बड़ी रानी अब दुर्बल हो चुकी थी। अधःपतन की चरम सीमा थी उसकी। मादक पेयों में मस्त वह मृतप्राय सी पड़ी रहती थी। वासना उसकी दुर्गन्ध देने लगी थी। लाचार श्वान की भाँति वह कभी-कभी हड्डी चाटने का असफल प्रयास करती थी। तत्काल उसकी दुर्दशा देखने

को जलती थी ।

गुणवती अपनी माँ की कोई चिंता नहीं रखती थी । दुष्ट प्रकृति की होने पर भी उसमें एक बहुत बड़ा गुण था । वह था—बाँसुरी वादन ।

बाँसुरी के स्वरों पर वह प्रभु की महत्ता के दर्शन करा देती थी । उस समय उसके भयानक सुन्दर मुख पर ईश्वरीय शांति और मृदुलता के दर्शन होते थे ।

उसके सौन्दर्य की चर्चा जहाँ-तहाँ होने लगी ।

एक दिन एक राजकुमार उसके ब्याह का प्रस्ताव लेकर आया । उसने उसका भव्य स्वागत किया और अन्त में उससे कहा "मैं आपसे तभी विवाह कर सकती हूँ जब आप मुझे उस चीते की खाल ला दें जिसकी खाल साधारण चीते की खाल से भिन्न है अर्थात् जिसकी खाल की धारियाँ सोने और चाँदी की हैं ।"

मैं सुनकर भौंचक्का रह गया—ऐसा चीता इस पृथ्वी पर संभव है ? मैंने काफी विचार कर अपने मन को इस तरह सान्त्वना दी कि कदाचित् यह संभव हो सकता है ?

बेचारा वह राजकुमार उस बीहड़ वन में जो गया तो वापस आया ही नहीं ।

इस प्रकार उसने अपने सौन्दर्य पर मुग्ध होनेवाले कितने ही राजकुमारों को मृत्यु-मुख में भेज दिया । उनकी मृत्यु के समाचार सुनकर वह मरण पर प्रसन्नता-भरा वीभत्स उत्सव मनाया करती थी । उसमें इस बात का प्रमुख अभिनय रहता था ।

इसी तरह के एक त्यौहार की रात्रि—

मेरी पत्नी ज्वर रोग से तड़प रही थी । मैंने अपने सेवक से राजकुमारी को कहला दिया था कि आज मैं आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सकूँगा ।

थोड़ी देर बाद मैं देखता हूँ कि दो सैनिक मेरे भवन के छोटे द्वार

पर खड़े हैं।

मैं उनके सम्मुख गया।

उन्होंने मुझे देखकर शिष्टता से सिर नवाया। एक ने नम्र स्वर में कहा "राजकुमारी की आज्ञा है कि आप अभी विलास भवन में चलें। यदि आपने अवज्ञा की तो हम "

मैं उनके आधे वाक्य का तात्पर्य समझ गया।

पत्नी को कलपती-तड़पती छोड़कर मैं राजकुमारी की सेवा में उपस्थित हुआ। उस दुष्टा ने मुझसे सहानुभूतिपूर्वक इतना भी नहीं पूछा कि मेरी पत्नी का स्वास्थ्य कैसा है? वह तो मधु की मादकता में उन्मत्त पड़ी थी।

नृत्य हो रहा था।

मुझे नाचने की आज्ञा दी गई। मेरा विचित्र नृत्य हँसी का उत्पादक कहलाता था।

मैं नृत्य करने लगा। सब दासियाँ मेरा कुरूप-नृत्य देख-देखकर खिलखिलाकर हँस रही थीं। उनकी खिलखिलाहट मेरे अन्तर पर हथौड़ों की चोट-सी लगा रही थी। व्यथा से आन्दोलित मेरा हृदय रो पड़ा।

मेरा रोदन उनका नया परिहास हो गया।

एक परिचारिका ने हँसकर कहा "देखा राजकुमारी जी इस नृत्य में रोना कितना अच्छा लगता है?"

राजकुमारी ने मादक स्वर में कहा "नृत्य को तेज करने के साथ-साथ उतनी ही तीव्रता से रोओ।

मैंने नृत्य को तेज किया।

वास्तव में मैं फूट-फूटकर रोना चाहता था और फूट-फूटकर रोने के लिए नृत्य की गति में तीव्रता लानी अत्यन्त आवश्यक थी।

मैं दुःख में उन्मत्त होकर जोर-जोर से उछलने लगा।

मधु व्यथा काम और आत्मग्लानि!

सब दासियाँ अट्टहास कर उठीं।"

राघु ने देखा कि विदूषक की आँखें भर आई हैं। उसने अपने दुपट्टे से अपने नेत्र पोंछे और व्यथा को आगे बढ़ाने लगा—

"उसके तीसरे दिन इसी प्रकार के एक उत्सव में एक परिचारिका ने आकर दुख-संवाद सुनाया "राजमाता की तबीयत अचानक बिगड़ गई है, उन्होंने आपको इसी समय बुलाया है।

मैं उस समय प्रभु से कामना करने लगा—'हे प्रभु इस समय यह अपनी माँ को कोरा उत्तर दे दे ताकि इसकी माँ अपने दुर्भाग्य को अच्छी तरह पहचान ले। वह जान ले कि जिस तरह मैंने अपने वंश का हत्या नाश करके बात-बात में उन्हें कष्ट दिया था वही कष्ट आज इसकी अपनी संतान भी उसे दे रही है।"

वही हुआ। गुणवंती ने तपाक से उस दासी से कहा "जाकर राजमाता से कह दो कि अभी हमें समय नहीं है हमारा उत्सव अपने चरमोत्कर्ष पर है।"

परिचारिका चली गई।

बड़ी रानी अपनी बेटी का बिना मुँह देखे ही मर गई। अकोटी रक्त से जन्मी उसकी बेटी गुणवंती ने माँ की मृत्यु पर दो अश्रु भी नहीं बहाये। खाओ पीओ और आनन्द करो।

शासन बदल गया।

राजकुमारी ने प्रजा पर तनिक ध्यान नहीं दिया। प्रजा का असंतोष विद्रोह का रूप धारण करने लगा।"

विदूषक लष्ट मोचन ने कहा "जीवन घटनाओं का केन्द्र है। वैचित्र्य भरा हुआ है उसके हर एक क्षण में।

समय को कौन रोक सकता है?

एक दिन रात के समय गन्धवती एकाकी बैठी-बैठी बाँसुरी बजा रही थी। आज उसके स्वर में प्रसन्नता की जगह व्यथा थी। आज उसके स्वर के भावों में उसके नारीत्व की घृणा और अपमान-जनित व्यथा थी।

बाँसुरी वादन रोककर वह फिर कल की घटना पर विचार करने

सकी। कल एक राजकुमार आया था। उसने उसको अपमानित किया।

'यह मेरा सर्वथा अपमान है। वह बड़बड़ाई—'मुझसे सुन्दर, मुझसे अधिक गुणवंती मुझसे अधिक वैभव-सम्पन्न? यह असंभव है, भला यह कैसे हो सकता है?'

फिर राजकुमार के शब्द गुणवंती के कर्ण-कुहरों में गूंजने लगे "तुम्हें यदि अपने रूप पर दंभ है तो एक बार महिमपुर की राजकुमारी के दर्शन कर के पर तुम्हें दर्शन कौन करने देगा!"

अपमान आग और पीड़ा!

गुणवती तिलमिला उठी। आवेश में उसने अपने अधर काट लिए।

"मैं उस राजकुमारी का मुख चाहती हूं। उसका कटा हुआ मुख!"

"पता नहीं" सकटमोचन ने पीड़ा से कराहते हुए कहा—"प्रभु दुर्घटमार्गों को पूरा करने में सहायता से क्यों सहायक बन जाता है? कदाचित् इसलिए की पापों की वृद्धि कर्त्ता के विनाश का शीघ्र कारण हो जाय।

गुणवंती वेदना से अभिभूत हुई अपनी शय्या पर करवटें बदल रही थी कि उसे वीणा का मधुर स्वर सुनाई पड़ा। वह बहुत समय तक उस वीणा के स्वर को सुनती रही और अन्त में उसने उस ओर जाने का निश्चय किया।

वहां जाकर उसने देखा—एक अत्यन्त रूपवान युवक है जो अपने रथ के समीप पड़ाव डाले उन्मादित अवस्था में पड़ा है। उसके समीप एक गायक वीणा-वादन कर रहा है।

उसने अपनी दासी को कहा और अपने आगमन की सूचना दी।

वह आगन्तुक गुणवंती को देखते ही मुग्ध हो गया और उसे एकटक देखकर कहा "मैं राजा रिसालू का अधिकारी वीर कर्णसिंह हूं। मेरी विशेषता है कि मैं जिसे चाहता हूं उसे किसी भी तरह प्राप्त करता हूं।"

गुणवंती ने उपेक्षा से दृष्टि घुमा ली।

"सुन्दरी!"

"तुम मुझे कदापि प्राप्त नहीं कर सकते।"

"यह नहीं हो सकता। तुम जैसी सुन्दर युवती को हर तरह प्राप्त करके अपने को सौभाग्यशाली समझूँगा।"

"फिर तुमने यह निश्चय कर लिया है कि मुझे प्राप्त करोगे?

"मैंने तुम्हें कह दिया है न कि मैं जिस वस्तु को चाह लेता हूँ उसे प्राप्त करता ही हूँ या उसे प्राप्त करने में अपना बलिदान कर देता हूँ। पर तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अभी तक मैंने असफलता के चरण नहीं चूमे हैं। मैंने जो चाहा उसे पूरा किया है।"

गुणवंती ने अल्पकाल के लिए मौन धारण कर लिया। रूपसिंह उसे प्यासी आँखों से देखता रहा। 'मैं इसे प्राप्त करूँगा' उसने मन-ही-मन सोचा।

"मुझे प्राप्त करने की प्रतिज्ञा अत्यन्त कठोर है। क्या उसे पूरा कर सकोगे?

"अवश्य!"

"मैं महिमपुर की राजकुमारी का मुख चाहती हूँ कटा हुआ मुख!"

रूपसिंह पर क्षण-भर के लिए बिजली गिर गई। उसके मुँह से हठात् निकल पड़ा "दुष्टा!"

"बस टूट गये! मैं कहती थी न कि मुझे प्राप्त करना सरल नहीं है। तुम्हारे जैसा व्यक्ति—'मैं जिसे चाहता हूँ उसे प्राप्त कर सकता हूँ' भले ही कह दे पर ऐसा करना बहुत कठिन है। नादान वीर, मैं कहती हूँ कि तुम अपने इस सिद्धान्त को आज से बदल दो।"

"रूपसिंह ऐसा नहीं कर सकता।"

"मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ, रूपसिंह?" गुणवती ने बातों के रुख को बदला।

"सुन्दर!"

"प्रथम दृष्टि-जनित प्रेम का प्रभाव मैं समझती हूँ तुम पर पूर्ण रूप से छा गया है।"

"हाँ ।"

"मैं समझती हूँ कि तुम यह भी चाहते हो कि मैं गुणवंती से विवाह करके अनंगपुर का महाराज बन जाऊँ ?'

"हाँ ।" हठात् उसके मुँह से निकला ।

गुणवंती ने तुरन्त अनुमान लगा लिया कि यह तरुण उस पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया है । अब यदि इसके दंभ को थोड़ा और उभारा जाय तो यह बड़ा से बड़ा अपराध कर सकता है ।

वासना सदा विवेक पर विजय पाती आई है ।

मैं समझती हूँ रूपसिंह जो तुम कह रहे हो उसे कर नहीं सकोगे। कथनी से करनी अत्यन्त दूभर है ।" इस बार गुणवंती ने अपना मुख उपेक्षा से दूसरी ओर घुमा लिया । यह उपेक्षा रूपसिंह के लिए असह्य हो उठी । राजा रिसालू भी उसका सम्मान करते थे क्योंकि उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि रूपसिंह जो कह देता है उसे पूरा करके ही छोड़ता है ।

एक बार राजा रिसालू ने उससे इतना निवेदन किया था कि उसे सोमपुर की राजकुमारी चाहिए । आवेश में उसने 'हाँ' कह दी । फिर क्या ? वह प्राणों की बाजी लगाकर उसका अपहरण कर लाया था ।

रूपसिंह उतावली से बोला "मैं महिमपुर की राजकुमारी का कटा हुआ मुख तुम्हें लाकर दूँगा ।"

"प्रतिज्ञा ।

"प्रतिज्ञा ।"

"फिर तुम निश्चित रहो कि तुम्हारे आगमन पर मेरी पलकें तुम्हारे चरणों में बिछी होंगी ।"

रूपसिंह ने कहा "अच्छा मैं जाता हूँ ।"

"आतिथ्य ग्रहण किए बिना मैं आपको नहीं जाने दूँगी । कम से कम आज रात-भर के लिए आपको मेरे यहाँ विश्राम करना ही होगा ।" गुणवंती ने आग्रह कहा पर रूपसिंह रूपासक्ति के वशीभूत हो गया था ।

और किंतु विवेक से सर्वथा हीन वह चरण बढ़ाते हुए बोला "अब तो मैं आपका आतिथ्य सफलता के पश्चात् ही ग्रहण करूँगा।"

गुलवंती ने जाते-जाते सव्यंग्य कहा "कहीं असफलता हाथ लगी तो ?"

"तो रूपसिंह अपने आपको विसर्जन कर देगा।

• • •

महिमपुर धर्मपुर का पड़ोसी नगर था।

सुखी और समृद्ध, जैसा स्वर्ग। भोला-भाला जैसा शिव। सुन्दर और गुणी जैसा विष्णु।

रूपसिंह सांध्य-बेला में महिमपुर पहुँचा। सराय में उसने अपना डेरा डाला। सराय की स्वामिनी एक मालिन थी—फूलकुँवर।

यौवन की सीमा पार करके उसका मन प्रौढ़ता की ओर झुका जा रहा था। गदराया रंग गठीला तन और मधुर-भाषिणी।

उसने रूपसिंह का बटोही जानकर भव्य स्वागत किया। आतिथ्य-प्रथा महिमपुर की विशेषता थी। मालिन ने भक्ति-भाव से उसकी सेवा की।

सेवा से शीघ्रातिशीघ्र निवृत्त होकर उसने रूपसिंह से प्रार्थना की "अब आप थोड़े समय के लिए विश्राम कीजिए, मैं अभी राजकुमारी को फूल देकर आई।" और उसने अत्यन्त उल्लास के साथ यह भी कह दिया "राजकुमारी को केवल मेरे हाथ के गुँथे फूल ही पसंद हैं इसलिए वह इस अकिंचन दासी को फूलकुँवर के नाम से पुकारती हैं।

रूपसिंह ने उत्साह से कहा "इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हें राजघराने की ओर से विशेष सम्मान प्रतिष्ठा प्राप्त है।"

"हाँ।"

"फिर तो तुम्हारा पद और मालिनों से ऊँचा होगा ?

"निस्संदेह।"

"तुम्हें यह भी अधिकार होगा कि तुम जिसे चाहो अपने साथ

अन्तःपुर में ले जा सकती हो।"

"हाँ!"

"फूलकुँवर!" रूपसिंह ने कोमलता से कहा, "क्या तुम मुझे अन्तःपुर में ले जा सकती हो। मैं प्रासाद का अवलोकन करना चाहता हूँ। इस अवलोकन के बदले मैं तुम्हें बीस सोने की मोहरें दूँगा।"

फूलकुँवर के मुँह में पानी भर आया। प्रसन्नता के मारे वह बोल नहीं सकी। रूपसिंह ने कहा, "सुनता आया हूँ कि मालिनें चाहें तो गढ़ का हर रहस्य बता सकती हैं। और तुम तो फूलकुँवर हो। गढ़ की *विशेष मालिन हो, राजकुमारी की प्रिय मालिन हो।* क्या तुम मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकती। लो ये बीस मोहरें और यह चन्द्रहार!"

फूलकुँवर चन्द्रहार देखकर मुग्ध हो गई। उसने उसी पल चन्द्रहार को अपने सीने से लगाया।

तारों की तरह चमकते हुए हीरे, बिजली की भाँति दमकती सोने की साँकलें! सुन्दर और अनुपम!

"यह उपहार है फूलकुँवर!"

फूलकुँवर ने कहा, "आप तुरन्त माली के वस्त्र पहन लीजिए, मैं आपको गढ़ में ले चलूँगी।"

रूपसिंह ने वस्त्र बदल लिए।

सांध्य-गीत समाप्त हो गया था।

रजनी का तारों-भरा आँचल संसृति पर आच्छन्न हो गया था।

महिमपुर की राजकुमारी स्नान से निवृत्त होकर अपनी सखियों के संग ठिठोली कर रही थी। मानसरोवर में नहाई हंसिनी की भाँति उसका तप्त स्नातित तन मशाल की धीमी ज्योति में दमक उठा था।

मालिन के साथ रूपसिंह ने गढ़ में प्रवेश किया। उसका ध्यान गढ़ के रास्तों, सब वीथियों और मोड़ों पर अधिक था। वह बड़े ध्यान से गढ़ के निर्माण को देख रहा था।

मालिन कभी-कभी संदिग्ध हो उठती थी।

पूछ भी बैठती थी "ऐसे घूर-घूरकर क्या देख रहे हो ?"

"ओह, कितना भव्य प्रासाद है ! मनोहर, अद्भुत मैंने ऐसा सुन्दर प्रासाद कभी नहीं देखा। फूलकुँवर, वास्तव में तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो इस प्रासाद में तुम्हारा सम्मान देख मुझे भी डाह होने लगी है।

फूलकँवर अपनी प्रशंसा सुनकर फूली नहीं समा रही थी। उसे ऐसा लग रहा था जैसे वह कोई साधारण मालिन नहीं अपितु सत्ता प्राप्त कोई अधिकारिणी है।

रूपसिंह ने हठात् पूछा "फूलकुँवर, तुम्हारी राजकुमारी का निवास स्थान कहाँ है ?"

"वह रहा सामने।"

राजकुमारी ने एक झीने रेशम की बूँगीदार धोती पहन रखी थी। उसकी कंचुकी केवल उसके वक्ष को ढँके हुए थी। केश राशि उसकी खुली थी।

मालिन के साथ एक अपरिचित युवक को देखकर वह बोली "यह कौन है ?"

फूलकुँवर ने नत-मस्तक होकर विनम्र शब्दों में कहा "यह मेरी बड़ी बहन का लड़का रूपकँवर है। आज के हार इसी के बनाये हुए हैं।

रूपसिंह ने प्रणाम किया। फिर उसका ध्यान राजकुमारी के मुख मंडल की ओर होता हुआ उसकी गर्दन पर रुक गया। राजकुमारी कितनी सुन्दर है उसकी आकृति कितनी आकर्षक है, उसकी आँखें हिरण जैसी है या नहीं उसकी नाक तोते जैसी है या नहीं उसके अधरों पर तरुणाई की अरुणाई विद्यमान है या नहीं इस क्रिया की ओर उसका ध्यान जरा भी नहीं गया। उसकी दृष्टि केवल राजकुमारी की गर्दन की ओर लगी हुई थी।

फूलकुँवर ने अपने पाँव से उसे सावधान करते हुए कहा "मैं समझती हूँ कि राजकुमारी को हमारे भांजे के बनाए हुए हार पसन्द आये होंगे ?"

अपना अपराध स्वीकार कर सकी।

• •

रक्त-सना वीभत्स और भयानक मुख को बार-बार वस्त्रों में परिवेष्टित करता रूपसिंह धर्मगपुर की ओर भागा आ रहा था। उसके ज्ञान तंतु इतने चंचल हो उठे थे कि उसे इसके अलावा किसी भी वस्तु का ध्यान नहीं रहा कि वह जाकर गुणवंती को महिमपुर की राजकुमारी का मत दे और उसे कहे कि वह अब उसकी धर्मपत्नी बनकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करे।

भागते भागते उसका समस्त बदन पसीना-पसीना हो गया था। उसकी अपनी श्वांस घोड़े की श्वांस की भांति फूल रही थी। प्यास के मारे उसका गला सूखा जा रहा था। लेकिन वह तीव्र गति से भागा जा रहा था।

उसके मस्तिष्क में तीन शब्द गूंज रहे थे —

कटा हुआ मुख!

गुणवंती!!

विवाह!!!

अचानक उसकी दृष्टि धर्मगपुर के प्रासाद पर फहराती हुई ध्वजा पर पड़ी। उसके समीप बड़ी मशाल जल रही थी। उस मशाल में उसके बिना चाहे ही उसकी दृष्टि अपने हाथ के वस्त्र की ओर चली गई। रक्त से सना वीभत्स लाल-लाल वस्त्र।

वह कांप उठा।

उसने क्षण-भर के लिए नेत्र मूंदकर प्रभु से साहस मांगा। एकाएक घोड़ा हिनहिनाकर रुक गया। रूपसिंह ने उसे ललकारा पर वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा।

लाचार उसने आगे की ओर देखा।

एक अजगर फन फैलाये हुए था।

मृत्यु की आशंका प्यार की आशंका पर चढ़ गई। मुख गुणवंती और विवाह इन सब पर मृत्यु का अंधकार गहरा और अधिक गहरा हो

गया। उसे बस मृत्यु के विषाक्त जबड़े ही दिखाई पड़ रहे थे। उसने घोड़े को दो कदम पीछे किया और तलवार खींचकर अजगर के फन के दूसरी ओर से बढ़ा। अजगर बहुत भारी था अतः वह शीघ्रता से घूम नहीं सका और रूपसिंह ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

मृत्यु पर विजय पाकर उसने महिमपुर की राजकुमारी के शव को सँभाला। शव वस्त्र में से कहीं सरक गया था। शीशा—सामने एक ओर पत्थर के टुकड़े की तरह पड़ा था।

रूपसिंह ने उसे उठाया। न चाहते हुए भी उसने उसे देखा। सहसा उसकी नसों में भय का संचरण हुआ और पल-भर पहले देखे हुए उस उल्लसित मुख का रूप-दर्शन उसके नैनों में तैर उठा। वह मालिन के साथ राजकुमारी के प्रासाद में गया था। राजकुमारी ने उसे प्रसन्न और प्रोत्साहित करने के लिए अपना कंठहार दे दिया था। कितना सुचितापूर्ण सौन्दर्य था उसका प्रभाति उसके कमल की तरह निश्छल आनन पर प्रदीप्त थी। सरल यौवन और भोला स्वभाव!

'मैंने उसे क्षण भर में मार दिया! आत्मा की गहराइयों से एक ध्वनि उठी। रूपसिंह काँप उठा। आत्मा की गहराई से निरन्तर उभरती हुई ध्वनि—'तू ने उस पवित्र प्रतिमा का अंत कर दिया उसके सुचिता के आधार यौवन को विकृत कर दिया तू महापापी और दुष्ट है। कुटिलता के कहने पर सहृदयता का हनन करना महामूढ़ता है ओ पापी, एक दिन अपराध में आगमन देनेवाली पुण्यवंती हत्या को जीवन सुख समझनेवाली मृत्युवंती कहीं तेरे शोणित की माँग न कर ले! और तू क्षणिक आवेश में आकर अपने आपका तर्पण न कर दे क्योंकि वह बहुत दुष्ट है वह बहुत निष्ठुर है वह रक्त-पिपासु है!

रूपसिंह का तन और मन शिथिल हो गया। महिमपुर की राजकुमारी का मुख उसकी मधुर मुसकान उसका सौन्दर्य बार-बार उसकी आँखों के आगे नाचने लगा। वह बावरा हो उठा। उसने लपककर शव उठाया वस्त्र में लपेटा और मदनपुर के प्रासाद की ओर बढ़ा—वह

सोचता हुआ कि ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है।

महल की चहारदीवारी में चरण रखते ही मृणावती ने उसका राजसी सम्मान किया।

कक्ष में प्रवेश करते ही उसने एक ओर रूपसिंह को आसन पर बिठाकर कुसुम्बे का चषक थमाया और दूसरी ओर उस मुण्ड को हाथ में लेकर अट्टहास किया। अट्टहास बड़ा भयानक था रूपसिंह काँप उठा। उसके हाथ का चषक नीचे गिर गया। उसके मुँह से हठात् धीमे स्वर में निकल पड़ा 'क्रूर!"

मृणावती ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उसने मुण्ड को अपने सिंहासन के नीचे रख लिया ताकि वह उसके चरणों का सहारा बन सके। रूपसिंह को न-जाने क्यों क्रोध आ गया। उसने गर्म स्वर में कहा 'रूप की रानी का इतना अपमान क्यों करती हो?"

"प्रिये किसी का ताना था कि महिमपुर की राजकुमारी का रूप तुमसे अधिक आकर्षक है उसके पाँवों की होड़ भी तुम नहीं कर सकतीं। वह व्यक्ति आज होता तो कितना अच्छा होता। मैं कहती—देखो यह मेरे पाँवों का आसन है।

केवल तुमने इतनी-सी बात के लिए इस बेचारी के प्राण लिवा लिये।"

'बात की मार अत्यन्त पीड़ाजनक होती है प्रिये! छोड़ो इन बातों को। आओ आज इस खुशी में नृत्य-गीत हो जाये।"

रूपसिंह का मन एकाएक घृणा से भर आया। आसक्ति का नशा उतर चुका था। उसने देखा कि नागमणी का मुख कर्मकों से भरा हुआ है। उसकी मुसकान विषभरी है उसकी पाँवों में दैपता का सागर लहरा रहा है और उसकी दृष्टि में विनाश की तेज कटारी।

वह विचलित हो गया। फिर संभला। दुर्बलता जागी।

उसने प्यार से पुकारा 'प्रिय मैंने तुम्हारे मन की इच्छा पूर्ण की है और तुम मेरे मन की क्या एक इच्छा पूर्ण कर सकोगी?"

अवश्य ।"

"अब न बैठी हो ?"

"बैठी हूँ ।"

रूपसिंह ने एक बार गुणवंती का अनुरक्तिपूर्ण चुम्बन लिया ।

फिर उसने कहा "अपनी जीभ को बाहर निकालना न प्रिये ।"

गुणवंती प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो गई । चुम्बनों की बौछार में विभोर-सी होकर उसने पूछा "प्रिय तुम्हें इतना पसीना क्यों आ रहा है ?"

"तुम अपनी जीभ निकालो ।"

"वह तो मैं निकाल रही हूँ । पर मैं पूछती हूँ कि तुम इतने घबरा क्यों गये ? मैंने तो कइयों के प्राण लिए, फिर भी इतनी नहीं घबराई ।"

"मैं कहाँ घबरा रहा हूँ प्रिये तुम जीभ निकालो न तब तुम बड़ी विचित्र और सुन्दर हो । बताओ अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?"

"बस तुम प्यार करते रहो लो यह जीभ "

गुणवंती ने जीभ निकाली । रूपसिंह ने एक बार उसे प्यार से चूमा और धीरे-धीरे उसने अपनी कमर में छिपी कटार निकालकर गुणवंती की जीभ काट डाली ।

गुणवंती ने आर्त्त किया । फिर वह अचेत हो गई । रूपसिंह अपने ललाट का पसीना पोंछता हुआ पवन-वेग से प्रासाद से बाहर हो गया ।"

• • •

विदूषक संकटमोचन ने धरती पर विचित्र चित्र बनाते हुए कहा, "यह गूँगी गुणवंती है अभाव ही प्रजा के सम्मुख जब इस रहस्य का उद्घाटन हुआ तब वह विद्रोह करने पर उतारू हो गई । राज्य-कोष समाप्त हो गया था प्रजा अन्न और आवश्यक वस्तुओं के अभाव से पीड़ित थी । मैं भी उसमें सम्मिलित हो गया । मुझे इस दुष्ट गुणवंती ने बहुत मार्मिक यंत्रणाएँ दी हैं, इसलिए मैं इस बात के लिए कटिबद्ध हूँ कि किसी भी तरह उसे बन्दी बना लूँ और उसके किए का दंड दूँ । पर वह

मृगछौने की भाँति चौकड़ी भरती ही रहती है। पवन-वेग से भागती है। मैं उसे बन्दिनी बनाने में सर्वथा असमर्थ रहा। लेकिन अब मुझे विश्वास है कि मैं उसे बन्दिनी बनाकर ही छोड़ूँगा।

क्षण-भर के लिए गहरी निस्तब्धता छा गई जैसे सभी गंभीर चिंतन मनन में लीन हैं।

बारह

अपराह्न वेला—

राजा रिझामू शयन-कक्ष में थकान मिटाने के लिए तन्द्रिल अवस्था में पड़े थे। आज उन्हें अपने जीवन के उस पक्ष की ओर ओर निराशा नजर आ रही थी जिस पक्ष को प्रेम या अपनापन कहते हैं। अपनी कुरूपता के कारण उनके चेतन और अवचेतन मन में जो आत्मग्लानि के पीड़ित भाव उत्पन्न हो गए थे उन्हें छुपाने के लिए उन्हें कभी-कभी अत्यन्त क्रूर बनना पड़ता था। मानवीय-सीमा का उल्लंघन करना पड़ता था। दया का अतिक्रमण करना पड़ता था और अहंकार को सजग कर अपने मानस की समस्त करुण अनुभूतियों का गला घोंट देना पड़ता था।

कभी-कभी वह सोचते और आत्म-आलोचना भी करते थे। तब उन्हें अपना जीवन उस पर्वतीय पथ से कम दुर्गम नहीं जान पड़ता था जो नागिन के चलने के आकार-सा प्रतीत होता है। उस पथ के निर्माण में उनकी ध्वंस-वृत्तियां अट्टहास किया करती थी। कहती थीं कि तू मनुष्य

नहीं आत्म-ग्लानि से पीड़ित एक अंगारा है जो जलता है और जलकर दूसरों को भी जलाता है।

रानी का एक क्षुद्र जीव के पीछे भागकर अपना जीवन उत्सर्ग कर देना राजा रिसालू के लिए जटिल प्रश्न बना हुआ था।

"क्या नारी प्रेम का बहता हुआ तूफान है? धन वैभव विलास महारानी का पद सबको छोड़कर एक साधारण व्यक्ति के पीछे चरित्र हीन कलटा व्यभिचारिणी दुराचारिणी बनकर भाग जाना और फिर मृत्यु का दंड अनुपम वरदान समझकर ग्रहण कर लेना इसे क्या कहा जा सकता है? क्या प्रेम के आरम्भ में नारी कोमल और अन्त में कर्तव्य निष्ठ हो जाती है? ओह! नारी कितनी महान् और श्रेष्ठ है! फूल की तरह कोमल और ईश्वर की तरह निर्दोष!"

"तो?" राजा रिसालू को कोई घटना स्मरण हो उठी। उनकी दृष्टि शयन-कक्ष के एक चित्र पर जम गई। एक भागता हुआ हिरन का जोड़ा था। सुन्दर और स्वस्थ। चौकन्ना और चंचल।

"पर राजा रिसालू जीवन के पथ के अन्तिम छोर पर भी अकेला है? नारी के तन पर आधिपत्य जमानेवाला यह राजा नारी के मन के सम्मुख पराजित हो गया। स्वयंवरों जीतियों और अपहरण की गई युवतियों से उसके मानस की प्रेम-तृषा शान्त नहीं होती वह तो दिन-प्रतिदिन प्रबल होती जा रही थी उसकी समस्त चेतना को पीड़ा पहुँचा रही थी उसकी समस्त इच्छाओं को भागते हुए स्वरूप को विकृत और अपंग बना रही थी उसकी महत्त्वाकांक्षा को कुंठित कर रही थी। वह भूखा था—नारी के मन पर विजय पत्नी के रूप में किसी सौंदर्य-सम्पन्न युवती का सहर्ष स्वीकार करना?" राजा रिसालू अपने आप पर तड़प उठे।

पर उनकी क्रूरता पौराणिक दैत्य-सी क्रूरता देव-कन्या का हृदय विजय करने में सर्वथा असमर्थ रही। वासना की विपुलता ने उनके ध्येय को केन्द्रीभूत नहीं होने दिया—एक केन्द्र पर। विवश वह असफल रहे। लेकिन आज वह निर्णय कर रहे थे कि वह अपनी तीसरी पत्नी का हृदय

प्यार से जीतेंगे उस पर बलात्कार और अत्याचार नहीं करेंगे। वह कुरूपता को दया और प्यार के आवरण में विस्मृत कर देंगे।

चतुरसिंह के आगमन ने उनकी विचारधारा को भंग किया। वह मैया के निकट आकर धीमे स्वर में बोले 'कम्मा अन्नदाता ने !"

'कहो ?"

'प्राणों की याचना करता हूं, महाराज।"

'ऊम्म। कहो रूपनगर के महाराज ने क्या कहा ?

'मैं वहां गया था।"

"महाराज मिले ?"

'हाँ उन्होंने मेरी बहुत ही आवभगत की।"

"तुमने हमारा सन्देशा कहा।"

'मैं आपकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझता हूं। मैंने आपका सन्देशा सुनाया।"

"उन्होंने क्या कहा ?

"महाराज उनके उत्तर को आप नहीं सुनें तो अति उत्तम होगा ?"

"क्यों ?"

'आज कई दिनों के पश्चात आपके श्रीमुख पर शांति की रेखायें देखी है। सूमी रानी ने आपकी अशांति को हरण कर लिया।"

'तेरा महाराज शांति को मृत्यु और प्रसन्नता को विष समझता है, यदि किसी ने उनकी किसी भी मांग का अनादर किया हो तो ?"

"उन्होने कहा कि राजा रिसालू प्रबल शक्ति के भरोसे क्या सारे संसार की मान प्रतिष्ठा खरीदना चाहता है। उसे जाकर कह दो कि रूपनगर का राजा सिंह की सन्तान है। मरते मर जायेगा पर आंच नहीं आयेगा। बेटी को मारकर अपने अहम् और आत्म-सम्मान की रक्षा कर लेगा पर राजा रिसालू को अपनी बेटी देकर अपना मस्तक नहीं झुकायेगा। धान और धान नहीं बेचेगा और "

'चुप क्यों हो गये सब कह डालो।" राजा रिसालू इतने क्रोधित हो

गये जैसे सती की मृत्यु पर भगवान खिन्न हुए थे।

"और मैंने रूपनगर के नरेश से कहा कि आप महाराज रिसालू की शक्ति को जानते हैं। उमड़ता हुआ सागर जिस प्रकार छोटे से द्वीप को अपने में समाहृत कर लेता है, उसी प्रकार रूपनगर का चिन्ह तक मिटा दिया जायेगा। उन्होंने उत्तर दिया कि हम जानते हैं कि सागर में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं किया जाता पर यदि मगरमच्छ छोटी-छोटी मछलियों के प्राण हरने पर उतारू ही हो जाय तो क्या किया जाय ? माना कि राजा रिसालू के पास अपराजय शक्ति है पर भगवान के समक्ष अपराजय का मूल्यांकन शक्ति द्वारा नहीं आंका जाता। वह तो पाप और पुण्य के सहारे मनुष्य और मनुष्य के कर्मों का लेखा-जोखा करेगा ? हम रूपनगरवासी प्रजाधिकार और अत्याचार सहने के आदी नहीं हैं। मैंने समझा कि मैं राजकुमारी से स्वयं मिलकर उसकी भी राय जान लूं। पर उस अभिमानिनी ने कहा कि मैं काने और कुरूप व्यक्ति को देखना भी पसंद नहीं करती।"

"काना उसने हमें काना कहा। चतुरसिंह ! सेना को तैयार करो। हम रूपनगर की ईंट-ईंट बजाकर उसे उतना ही कुरूप बना देंगे जितने कि हम हैं।"

चतुरसिंह चला गया।

राजा रिसालू दर्पण के सम्मुख खड़े हो गये। कल्पना हाहाकार कर उठी। वैभव और विलास उपहास से खिलखिला पड़े। घृणित उपहास के वातावरण की उनके चारों ओर सर्जना हो गई। काना-कुरूप काना कुरूप काना-कुरूप ये दोनों शब्द उनके कर्ण-कुहरों में गूंजने लगे। दर्पण ने इन शब्दों को सत्य बना दिया। क्रोधावेश में राजा रिसालू ने दर्पण को चूर-चूर कर दिया।

खंडित दर्पण के टुकड़ों में राजा रिसालू की कुरूपता के कई रूप दीखने लगे। उसने जोर से पुकारा "चतुरसिंह !

दासी ने आकर कहा "वह नहीं है।

जाओ सेनापति जी से कहो कि सेना को आज ही कूच करा दिया जाय।"

दासी चली गई। राजा रिसालू की अहम्मन्यता क्रमशः बढ़ती गई— मुझे काना कह दिया। आज की और धर्मात्मा की जगह काना कहकर मैं रूपनगर को विध्वंस कर दूंगा विध्वंस "

गुणवंती ने जब सुना कि महाराज ने रूपनगर को विध्वंस करने की प्रतिज्ञा कर ली है तब वह भागी भागी राजा रिसालू के पास आई। उनके चरण स्पर्श करके अश्रुभरी आँखों से राजा रिसालू की ओर देखा। राजा रिसालू की क्रूरता और दुष्टता न-जाने गूंगी रानी के सामने क्यों लुप्त हो जाती थी?

"न रो रानी।" राजा रिसालू ने धैर्य से कहा "यह राजनीति है जहाँ मरण-त्योहार सदा मनाया जाता है। तू निश्चिन्त रह, तेरे राजा का कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकेगा।"

राजा रिसालू ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। गूंगी सिसक पड़ी।

"रोती है नादान तू समझती है कि तेरा पति निर्बल हो गया है? नहीं री राजा रिसालू की शक्ति अजेय है। उसका विरोध विनाश है। जा तू विश्राम कर।"

गूंगी चली गई।

राजा रिसालू ने सोचा "न जाने इस गूंगी पर मेरा अन्तर इतना क्यों दयालु है? मैं क्यों नहीं इसके समक्ष सत्य का उद्घाटन करता कि मैं शीघ्र ही अपनी परिणीता को मारनेवाला हूँ। मेरी प्रवृत्ति और वासना में तनिक भी अन्तर नहीं आया है बेचारी गूंगी ।"

राजा रिसालू ने शय्या पर करवट बदल ली।

• •

तेरह

रात का गहरा सन्नाटा ।

काँपती हुई शून्यता । भयभीत पवन । आर्त करती बरती पीड़ित और प्राणहीन मिट्टी का क्रन्दन । शाश्वत गर्द और दर्द का कथन ।

सैनिकों के पृथ्वंसकारी पद । युद्ध की विभीषिका भयभीत तारों की बुझी-बुझी ज्योत्सना । राजा रिसालू का क्रोध विनाश मनुष्य के मर्म की हत्या रूप का हरण यौवन की हत्या । दुष्कर्म पाप और अन्याय । कोई नहीं जानता था यह विनाशकारी झंझा किस सुन्दर और अद्भुत चट्टान को खंड-खंड करता चला जा रहा है ?

तीसरे दिन दोपहर को राजा रिसालू की प्रबल सेना रूपनगर की सीमा पर पहुँची ।

राजा रिसालू स्वयं अश्वारूढ़ थे । उनके हाथ में साँप की जीभ की भाँति लपलपाती तलवार थी । सैनिकों के बीच में खड़े होकर उन्होंने दो ही शब्द कहे—"तुम्हारे देवता का पुत्र इस चहारदीवारी के राजा

द्वारा अपमानित हुआ है। देखना उसका बदला चाहता है।"

शोर का शोर हुआ "राजा रिसालू की जय! राजा रिसालू की जय!!"

रणभेरी बजी।

युद्ध के नगाड़ों ने धमक-धमक बजकर सैनिकों को उत्साहित किया।

सैनिकों ने रूपनगर पर आक्रमण कर दिया।

भयानक युद्ध हुआ।

सातवें दिन रूपनगर का राजा लड़ते-लड़ते मारा गया। मरते समय उसके मुख पर यही वाक्य था 'स्वतंत्र रहो परतंत्र नहीं। यदि भाग्य वश परतंत्र बना दिए जाओ तो उस पक्षी की तरह सतत प्रयत्नशील रहो जिसे पिंजरे में बन्दी बना दिया गया है और जो अपने स्वामी की उस असावधान अवस्था की प्रतीक्षा करता है जिस अवस्था में वह अपने शत्रु स्वामी को पराजय कर सके।

प्रजा ने अपने राजा के शब्दों का अनुसरण किया।

राजा रिसालू ने नगर पर दृष्टिपात किया। बदला हुआ मरघट सुनसान और वीरान। जगह-जगह मानव-मांस की जल-जलकर चिट-चटने की आवाज।

दुर्गन्ध और सड़ांध।

राजा रिसालू के होंठों पर क्रूर मुस्कान नाच उठी। वह सोच बैठा 'यह रूपनगर काना ही नहीं अन्धा हो गया है कुरूप ही नहीं विकृत हो गया है।

बाज की भांति झपटकर एक वृद्ध ने राजा रिसालू की गर्दन दबोच ली। एक सैनिक ने आकर उसे दूर किया। वह चिंघाड़ पड़ा "ओ दुष्ट! देख इस नगर को! यह तेरा अहंकार है, दमन है तृष्णा है। तूने मेरे कलेजे के टुकड़ों को छीन लिया है भगवान तेरा सुख और शांति छीन ले।" क्रोध में उसकी मुट्ठियां भिंच गई। आँखों से घृणा की चिनगारियां बरस पड़ी "यह रूपनगर अब तेरा नगर है। अब तू इसका नाम मरघट

रखना और मे जितने धन हैं, उन्हें हाटों और प्रासादों में सजाकर इसका उस नादान बालक की भाँति अवलोकन करना जो अपनी माँ से पूछता है कि यह क्या है ? और माँ कहती है कि यह चाँद है तेरा मामा हमें रात को प्रकाश और ठंडक देता है। तू मुझसे प्रश्न करना मैं तुझे नहीं संसार से कहूँगा 'यह राक्षस है मानवी रक्त-माँस पीता और खाता है। ये हैं इनकी आत्मा के महान् वचन—धन ! विकृत और पुलकित आँखें घिनौनी दुर्गन्ध देनेवाले कंकाल।" और वह वृद्ध चोर की अट्टहास करता हुआ समीप पड़े धन पर कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ा। एक पल सिसका एक पल तड़पा और एक पल में उसकी आत्मा उसके तन से निकल गई।

तात्विक गहरी उदासी राजा रिसालु के चेहरे पर छा गई। वह आगे बढ़ा। चार कदम चला ही था कि एक सुन्दर युवती प्रतिमा सी उसके सम्मुख खड़ी हो गई। वह उसे उस विचित्र दृष्टि से देख रही थी जिस दृष्टि से हम एक अकल्पनीय वस्तु का निरीक्षण करते हैं।

राजा रिसालु ने डरकर पूछा "तू कौन है ?"

युवती खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली "तू मुझे नहीं पहचानता है ? मैं धरती की बेटी हूँ विधवा बेटी। देख मेरे वस्त्र काले और काले हैं ? अरे, तू मुझे नहीं पहचानता धरती का स्वामी होकर धरती की बेटी को नहीं पहचानता। तू कठोर की पराकाष्ठा का प्रतीक है। मेरा सुहाग लूटकर भी मुझे याद नहीं रखता। देख मेरा स्वामी धरती की गोद में चित्त पड़ा है। इतना शांत जितने शांत बहेलिए के तीर से मरकर भगवान श्रीकृष्ण पड़े थे ओ कृपालु राजा ! क्या तू इस दीन युवती पर इतनी दया नहीं कर सकता कि यह भी अपने पति की भाँति चिर शांति पा ले। मैं युवती हूँ—वासनाओं और कामनाओं की आगार पाप का भंडार पर तू यह भी जानता है कि पति के होते ये समस्त बुराइयाँ एक अच्छे मोड़ में अपना रास्ता बदल लेती हैं पर अब ? ओ दयालु ! तू अपनी कटार से मेरी आत्मा निकाल ले ताकि मैं उस दैत्य का मुँह नहीं देखूँ जो मृत्यु के कोर से नहीं डरता जो मानवी रक्त-माँस से अपनी

मान और शान का झूठा सहारा चाहता है जो अपने अहंकार की तृप्ति के लिए जीवन की आहुतियाँ लेता है।" और युवती ने बिजली की भाँति कौंधकर राजा रिसालू की कटार अपने सीने में भोंक ली।

राजा रिसालू पल-भर के लिए विचलित हो उठा। मानव-संहार का ताण्डव नग्न विकृत रूपों के रूप में हो रहा था। पर उसके अन्तस की ग्लानि को एक अपरिसीम सुख की अनुभूति हो रही थी मानो वह कह रही थी कि रूपनगर यह भूल गया कि तू कुरूप है काना है।

तब राजा रिसालू ने रूपनगर की अतुल संपत्ति पर अधिकार करके अपना झंडा उसके सूने गढ़ पर गाड़ा। दीवान भुजपतसिंह को यह आज्ञा दी गई कि सारी लाशों के जलाने और नदी में बहाने का प्रबन्ध करके वह महाराज से तम्बू में मिलें।

राजा रिसालू नगर के बाहर गाड़े गए खेमों की ओर चले। तभी एक सैनिक ने आकर समाचार सुनाया।

"क्षमा अन्नदाता।"

"क्या है?"

"राजकुमारी बन्दी बना ली गई है।"

राजा रिसालू के चेहरे पर इतनी देर के बाद वे भाव आये जिन्हें विजय न उत्पन्न भाव कह सकते हैं। आह्लाद-भरे स्वर में वह बोले "हम विजयी हो गये चतुरसिंह, हम वास्तव में विजयी हो गये।"

"सैनिक! उसको किसने बन्दी बनाया?"

"किसी ने नहीं वह अपनी इच्छा से बन्दिनी हुई।"

"सुन्दर के साथ और भी है। उसे हमारे खेमे में उपस्थित करो। हम उसे देखना चाहते हैं।"

"अन्नदाता! वह आपसे कल सुबह भेंट करना चाहती है। उसके साथ उसकी सेविका कोमल भी रहेगी।"

राजा रिसालू कुछ देर तक सोचते रहे। कल सुबह भेंट करने में क्या रहस्य हो सकता है, इस पर विचार-विवेचन कर उन्होंने विश्राम

छोड़ा। गंभीर स्वर में बोले "रात को कड़ा पहरा रखा जाय। ध्यान रहे यदि राजकुमारी भाग गई तो हम पहरेदारों को जीवित दीवारों में गाड़ देंगे चतुरसिंह! हमें तुम पर अडिग विश्वास है। तू हमारे साथ विश्वासघात नहीं कर सकता। इसलिए यह कार्य तेरे नेतृत्व में संचालित और पूरा होना चाहिए।"

चतुरसिंह ने सिर झुकाकर कहा "जो आज्ञा।"

"पर?" राजा रिसालू कहते-कहते चुप हो गये। चतुरसिंह ताकता-ताकता रह गया।

"देखो चतुरसिंह, हम एक बार राजकुमारी को देखना चाहते हैं।"

"देखिये।"

"लेकिन उसे इस बात का पता नहीं लगना चाहिए कि हमने उसे छिपकर देखा है।"

"जो आज्ञा।"

राजा रिसालू के भारी-भरकम कदम राजकुमारी के कक्ष की ओर उठ गये।

सारी रात राजा रिसालू को नींद नहीं आई। राजकुमारी का अनुपम सौन्दर्य उनके मस्तिष्क में सौरभ की भाँति छा रहा था। रूप की ऐसी आकर्षक छटा उन्होंने बहुत कम देखी थी। वह सान्निध्य के लिये व्याकुल हो उठे तड़प उठे।

प्रभात होने में थोड़ी देर थी। मटमैला अन्धकार अभी अन्तरिक्ष में छाया हुआ था। भोर का तारा झिलमिलाने के लिये आतुर हुआ और प्राची में प्रभात की आभा चमकी। देखते-देखते प्रकाश सारे संसार में छा गया।

राजा रिसालू ने द्वारपाल को आज्ञा दी "जाओ चतुरसिंह को कहो कि राजकुमारी को हमारे सामने उपस्थित करो।"

राजा रिसालू ने अभी वाक्य समाप्त ही नहीं किया था कि चतुरसिंह ने घबराये हुए स्वर में प्रवेश करते हुए कहा "अन्नदाता-अन्नदाता!"

अन्धेर हो गया।

"क्या हो गया ?"

"अन्धेर महान्धेर।

"कुछ कहो।"

'राजकुमारी ने क्षार[1] से अपना मुँह और हाथ जला लिये।"

राजा रिसालू अपने आपको नहीं रोक सके। पवन-वेग से वह उस डेरे की ओर भागे जिसमें राजकुमारी बन्दिनी बनाई हुई थी। वैद्य का शीघ्र प्रबन्ध किया गया। उपचार भी हुआ लेकिन व्यर्थ।

लगभग एक पहर के बाद राजकुमारी की चेतना लौटी। उसके पास चतुरसिंह उदास बैठा था। उसने आँखें खोलते ही पूछा "महाराज रिसालू कहाँ हैं ?"

'अपने खेमे में।

"उन्हें बुलाया जाय मेरी ओर से प्रार्थना की जाय कि वह एक पल के लिए अपने दर्शन दे जाएँ।"

चतुरसिंह वहाँ से चला गया। राजकुमारी के पास अब उसकी प्यारी दोसन ही रह गई थी। राजकुमारी को कराहते देख उसकी आँखों में आँसू भर आये। भर्राये स्वर में बोली "यह क्या किया राजकुमारी जी !"

'मैंने वही किया जो मुझे करना चाहिए।" उसकी आँखों में भी अश्रु छलछलाये।

"अपने आप पर इतना अत्याचार करके आपको किस उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है मैं नहीं समझ पाती।" वह जिज्ञासा से एकटक राजकुमारी को देखती रही।

"यह रूप नहीं होता तो कमलनगर की ऐसी दुर्दशा ही नहीं होती मैंने आवेश में एक ही गलती की कि कुछ देर कर दी। यदि पहले ही इसे जला डालती तो मैं अपराधिन नहीं होती। मेरे माता-पिता का इस राक्षस

---

१ तेजाब।

के हाथों सर्वनाश न होता।"

"राजकुमारी सा! अब मुझे आपसे डर लगता है।" वह डरती हुई बोली।

"घृणा नहीं होती?

"होती है।"

"मैं तुझसे बहुत ही खुश हूँ डोलन! मरते समय तुझे अपने साथ रखने का यही कारण है कि तूने कभी भी लाचारी और भय से झूठ नहीं बोला। तेरा सत्य भाषण मुझे बहुत ही प्रिय है।" उसने डोलन का हाथ अपने हाथ में लेकर चूम लिया। डोलन फफक पड़ी। उसका कलेजा दुख के मारे फट गया। वह चीखकर रो पड़ी। राजकुमारी ने उसे सांत्वना दी—"पगली! तू रोती है! रोने से भाग्य की रेखायें नहीं बदलती हैं और न ही रोने से हृदय की करुणा ही कम होती है। हाँ दर्द बहकर हल्का हो जाता है। लेकिन उस दर्द के अभाव में अनुभूति दुर्बल हो जाती है और अनुभूति विहीन तन होता है मांस का लोथड़ा पाषाण और व्यर्थ। इसलिये दर्द को जीवित रखो और दर्द को लेकर मृत्यु की गोद में सो जाओ।

सूरज का प्रकाश खेमे पर पड़ने लगा था। संतरी अब भी पहरा दे रहा था। वह भीतर की दुर्घटना से जरा भी प्रभावित नहीं हुआ था। वह पृथ्वी की भाँति अपनी कर्तव्य पर रात से निरन्तर चलकर लगा रहा था—खेमे के द्वार के आगे सजग पहरा दे रहा था।

भारी-भरकम पद-ध्वनि सुनते ही डोलन ने कहा "राक्षस आ रहा है राजकुमारी सा!"

"ऐसा कहो कि मेरी मृत्यु आ रही है।

'फिर ?' डोलन के दुख भरे नैन बोल उठे कि भगवान के लिये ऐसे अशुभ बोल मुँह से न निकालिये।

"पगली! सत्य का अनुपालन आत्मा मस्तिष्क की बिना आज्ञा लिये ही कर देती है। यह मेरी आत्मा का सत्य है झूठ नहीं हो सकता।"

उसकी आँखों से अविरल अश्रु-धारा बह चली।

राजा रिसालू ने खेमे में प्रवेश किया।

सहसा उठकर एक ओर खड़ी हो गई। राजकुमारी ने अधभरी मुसकान अधरों पर लाते हुए धीमे से कहा 'महाराज की जय!

राजा रिसालू अकचका हो गये। जय-शब्द में छिपे तीखे व्यंग्य और मार्मिक व्यथा से विमूढ़ हो गये। एक अपराधी की भाँति निश्चल खड़े हो गये।

"महाराज! आज आप उदास हैं। क्या बात है?"

राजा रिसालू पूर्ववत् दशा में खड़े रहे।

आप बोलते क्यों नहीं?"

"आपको जो कहना है वह शीघ्रता से कहिये!"

"आप बैठिए न इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं। ओह! समझी शायद आप मुझे भूल गए हैं। महाराज! मैं रूपनगर की राजकुमारी हूँ—रूप रस्म और विरूप की पुतली। मैं आपको हार्दिक प्रेम करती हूँ महाराज! आप मुझ से दूर न होइये।" कहते-कहते राजकुमारी ने राजा रिसालू का हाथ पकड़ लिया। राजा रिसालू ने चौंककर अपने हाथ को मुक्त किया।

वह तप स्वर में बोल पड़ी—"आपको मेरा स्पर्श अच्छा नहीं लगता न लगे पर मुझे तो आप बहुत अच्छे लगते हैं। इतने जितना सूरज जितना चाँद!"

"चतुर्सिंह!" द्वार की ओर उन्मुख होकर राजा रिसालू बोले "मालूम होता है, राजकुमारी पागल हो गई है।'

जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ गई हो जैसे पर नमक छिड़क दिया हो उस प्रकार चिहुंक पड़ी राजकुमारी "पागल मैं नहीं पागल आप हो गये हैं। यदि आप पागल न होते तो अपनी क्षणिक तृष्णा के पीछे एक नगर का विध्वंस नहीं करते मानवी-रक्त से धरती की चूनर नहीं रंगते मिट्टी को लहूलुहान नहीं करते"

राजा रिसालू क्रोधित हो उठे "चुप ! राजा रिसालू जिस वस्तु को पसन्द कर लेते हैं उसे प्राप्त करके छोड़ते हैं। 'न' सुनना उन्हें जरा भी पसन्द नहीं। पराक्रमी राजा अपनी आकांक्षा को असफल होते कभी नहीं देख सकते। वह जिसे चाहते हैं उसे प्राप्त करते ही है, किसी भी अवस्था में।"

"और मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि आपने मुझे प्राप्त कर लिया महाराज ! कब आप मुझसे ब्याह करनेवाले हैं ? बारात बड़ी धूमधाम से आयेगी। शहनाई नगाड़ा नफीर, ढोल ! महाराज ! पीले हाथ देखकर नारी कितनी प्रसन्न होती है ? दुल्हन के वेश में उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ते वह उड़ती है स्वच्छन्द पंछी की भाँति नील निलय में जो अनन्त है अगम है अपराजेय है।

राजा रिसालू आहत हो उठे। ताड़ना-भरे स्वर में बोले "होश में आओ राजकुमारी, होश में।

"मैं बेहोश नहीं हूँ महाराज ! मेरा क्षमागर गया जला कि मेरी चेतना का अणु-अणु जाग उठा। मेरी व्यथा का कण-कण जाग उठा। अब मैं जीवन में कभी भी बेहोश नहीं हो सकती। मेरा अहम् गर्व दर्पित सम्मान सभी तो निराधार हो गये। आधारहीन कोई तत्व भी नहीं रह सकता। अब मैं मानव हूँ पूर्ण मानव विकार रहित मानव" आइये मुझसे प्रेम कीजिए, आलिंगन कीजिए।"

राजकुमारी हठात् उठी और सजग राजा रिसालू के गले से लिपट जाना चाहा। राजा रिसालू कड़ककर बोले "दूर जाओ तुम्हारे फफोले फूट जायेंगे पीर होगी।

आप घबराइये नहीं पीर मेरे होगी होने दीजिए। मैंने कहा न पीर में जीवन का आनन्द है। बस आप मुझे प्यार कीजिए।

राजा रिसालू क्रोधित हो गए।

"चली जाओ मैं कहता हूँ मुझे जाने दो।

राजकुमारी उनके आगे खड़ी हो गयी।

"तुम मुझे नहीं जाने दोगी ?"

"नहीं तुम मुझे प्रेम क्यों नहीं करते ?"

राजा रिसालू की घृणा बोल उठी 'हट जाओ मेरे सामने से ! नहीं तो मैं सैनिकों को पुकारता हूँ।"

"महाराज !" वह शेरनी की भाँति खड़ी होकर बोली "अब तुम मुझ से प्रेम नहीं कर सकते ! क्योंकि मैं उतनी ही कुरूप हूँ जितना तुम। मैं उतनी घृणित हूँ जितना तुम। फिर भला यह कैसे सम्भव था कि कोई तुम से प्रेम करता ? कोई नारी अपना कन्दन-सा तन और सुन्दर मन तुम्हें अर्पण करती ? रूप के विलासी ! रूप के अन्तर्निहित क्या नश्वता है, इसे अपनी आँखों से देख। ऐसी ही विकृति ऐसी ही घृणा और ऐसा ही कंकाल तुम में और मुझमें है। ईश्वर का निर्माण भीतर से एक सा है बाहर से विभिन्न। पर रूप और वासना में मदान्ध प्राणी वासना की विपुल पंक में फँसकर मानवी-सौन्दर्य की चमक-दमक के पीछे बाज की भाँति पड़ जाते हैं और उसका विनाश करके मानवता के कलंक कहलाते हैं। तुम भी वही कलंक हो।

"तुमने केवल मेरे लिये एक सुन्दर नगर का नाश कर दिया सहस्रों घर उजाड़ दिये माताओं को अपने बेटों से बहनों को अपने भाइयों से और धरती को अपनी सन्तान से विमुख कर दिया। क्यों ? केवल इस लिए कि मैं तुम्हारी मदान्ध सूरत पर अपना सर्वस्व विसर्जन कर दूँ !"

"राजकुमारी !

"मैं अब चुप नहीं रह सकती। मेरी वाणी अब तुम्हारी सत्ता की शक्ति से अवरुद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि मैं अभय हूँ। मेरे पास अब कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी सुरक्षा में मुझे भयभीत होना पड़े जिसके लिये मुझे प्रभु से प्रार्थना करनी पड़े।

मैं अब निर्भय होकर कहूँगी कि तुम मानव नहीं दानव हो। पौराणिक दानव से अधिक हृदयहीन और कठोर क्रूर और विनाशकारी !"

"ये जलती हुई चितायें चटखते हुए नर-कंकाल और धक्क धकमकर

किस पिशाच-लीला के कोप का मातम नहीं जान पड़ता ? पर प्रकृति और प्रभु का चिरन्तन नियम है । कोई भी प्राणी उससे बच नहीं पाया। सब जन्मते हैं और सब मरते हैं । अणु विराट में मिलता है और एक दिन मैं और तुम भी उसी विराट में लीन हो जायेंगे । उस प्रकाश के महापुंज में एकाकार हो जायेंगे जिसकी हम एक ज्योति हैं ।

"उस महाशक्ति के समक्ष अपने अपराधों की क्या सफाई दोगे ? यह न्यायालय तुम्हारी है । इसके न्याय और न्यायाधीश तुम्हारे संकेतों पर नाचते और थिरकते हैं पर जो ऊपर का न्यायालय है वहाँ व्यक्ति का कोई भेद नहीं कोई अस्तित्व नहीं । वहाँ नियम अपराधी को नहीं उसके कर्मों को देखता है । उस न्यायालय के दंड उसे ही क्षमा करते हैं जो निरपराधी होता है ।

राजा रिशामू के ललाट पर स्वेद कण उभर आये । उसका रोम रोम काँपने लगा । वह कमरे से बाहर निकलने के लिए इधर-उधर झाँकने लगा । राजकुमारी उसकी ओर बढ़ती गई । उसकी आँखों में खून उतर आया था । वह टूटते हुए स्वर में बोली 'तुम जाना चाहते हो तो जाओ पर जाने के पहले तुम्हें एक काम करना होगा । मुझे प्यार से स्पर्श करना होगा । इतना कहकर राजकुमारी लड़खड़ाती धीरे-धीरे आगे बढ़ी ।"

"मैं तुम्हें नहीं छुऊँगा नहीं छुऊँगा "

"क्योंकि मैं कुरूप हूँ और तू काना और कुरूप दोनों है । राक्षस ! मैं तुम्हें अभिशाप देती हूँ कि तुम्हें कभी भी सुख न मिले ।"

[राजा रिशामू कमरे के बाहर भाग गये । कौशल ने भीतर 'आकर देखा—राजकुमारी धरती पर अचेत पड़ी है । उसकी साँस टूट रही है । वह उसके गले से लिपटकर रो पड़ी । हृदय-विदारक दृश्य था—कौशल और राजकुमारी के अन्तिम-मिलन का ।

"बहन ! तू चली ।"

"हाँ बहन ! मृत्यु कब बुलाने आ जायेगी यह कोई नहीं जानता ?

पर पगली ! तू इस सत्य पर रोती क्यों है ?"

'रोऊँ कैसे नहीं बहन तेरे बिना' वह फिर फफक पड़ी । राजकुमारी के नेत्रों से गंगा-यमुना बह रही थी ।

रोदन-भरे स्वर में राजकुमारी बोली "मेरी एक इच्छा पूरी करोगी ?"

उसने रोते रोते हाँ कहा ।

"जब तू दुखी हुआ करती थी न ?"

"हाँ ।"

"तब तू वह गीत गाया करती थी ?

"कौन-सा ?

"विदा का—वही गीत आज मुझे सुनाओ ।"

डोलन ने दर्द-भरे स्वर में गाना शुरू किया—

सुण रे भायली "

चतुरसिंह और अन्य सैनिक भी कोने में आ गए थे । वे डोलन के दर्द-भरे स्वर में खो गये ।

स्वर तेज हुआ—

'सुण रे भायली,

छोड़ रे म्हाने

जासी रे एकली जासी रे एकली

सुण रे भायली "

पीड़ित धरती दर्द से कह उठी "सुन ए सहेली हमें छोड़कर अकेली कहाँ चली सुन तो "

दर्द और बढ़ा—

"बालपणे री बातां बिसारे,

क्यों बड़ी तू रास्तां बिसारे

गुड़ड़ा-गुड़ड़ी सुख-मिचणी

हिवड़े तू तू हियाँ निसारे

सुण रे बादली ..."

रोता हुआ आकाश सूरज की किरणों से कह उठा "देखो वह जा रही है। बचपन की बातें और सलोनी रातों को भुलाकर गुड्डे-गुड़िया के खेल और आँख मिचौनी को भुलाकर। ऐ बादल! तू इन सबको हृदय से कैसे भुला रही है।"

ढोलन फूट पड़ी। सैनिक की आँखें तरल हो गईं। प्रकृति ने कहा गा ढोलन गा विदा के गीत में देर अच्छी नहीं रहती। गा इतने दर्द से गा कि संसार के आँसू थमे ही नहीं।

आभो पुकारे ठैर जा छिन भर
तू बिजली म्हारी तू है धड़कन
धरती पुकारे-तू म्हारी जाई
तू म्हारे हिवड़े री रही तपन
सुण रे बादली ..."[1]

बिदाई गीत खत्म हो गया।

दुलहिन ने सदैव के लिए विदा ले ली।

खेमे में ढोलन का क्रन्दन था। सैनिकों का दर्द था और पाषाण चतुरसिंह के हृदय की व्यथा आज सालों के बाद आँखों की राह बही।

अचानक ढोलन चीखी "राजकुमारी सा! राजकुमारी सा! मुझे भी ले चलो। मुझे भी ले चलो ..." वह खेमे के बाहर भाग गई।

• • •

दूसरे दिन का सूर्य डूब रहा था। संसार नीरवता के आवरण में डूबा जा रहा था। पंछी सांध्य-गीत गा रहे थे। ये पंछी शोक और दुख से मुक्त होते हैं। रतनपुर की विनाश-लीला का इन पर तनिक प्रभाव

---

१ आकाश तुम्हें पुकार रहा है कि पल-भर के लिए रुक जा क्योंकि तू उसकी बिजली है धड़कन है। धरती कहती है कि तू मेरी बेटी है और मेरे मन की तपन है। ऐ बादल रुक जा रुक जा।

नहीं पड़ा।

चतुरसिंह आज अस्वस्थ था। रात उसने स्वप्न देखा था। स्वप्न में एक युवती की विद्रोही आत्मा की पुकार ने उसे आतंकित कर दिया था। उस आत्मा का विद्रोह समाज की मान्यताओं को बाधित कर उस धारा की भाँति प्रवाहित हुआ था जो निर्बाध होती है। उस स्वप्नमयी आत्मा ने चतुरसिंह का गला पकड़ कर उच्च स्वर में कहा—मैं मर कर भी तेरा प्राण नहीं छोड़ूँगी। जिस प्रकार पाप मनुष्य का किसी भी जन्म में साथ नहीं छोड़ता उसी प्रकार मैं भी तेरा साथ नहीं छोड़ूँगी। मैं तुझे अपने साथ लेकर जाऊँगी। उस आत्मा ने उसे कड़े शब्दों में फटकारा भी कि तू मनुष्य है सोचता और समझता है। तेरे हाथों में शक्ति का अजस्र स्रोत है प्रलय का विनाश है निर्माण का बोध है। लेकिन अपनी समस्त भावनाओं का खून करके तू उस व्यक्ति का दास हो गया है जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता जिसके मानस में करुणा की एक किरण भी नहीं है। ऐसे अन्धकार में अपने को लीन करके मनुष्य की संज्ञा से परे रहना कायरता है। ऐसे कायर पुरुष पृथ्वी पर भार-स्वरूप होते हैं। उस आत्मा ने चतुरसिंह के भयभीत चेहरे पर बहते हुए अश्रुओं को देखकर साहस भरे-स्वर में कहा तू समझता है कि तू लाचार है, तुझमें संघर्ष की शक्ति नहीं विरोध करने की क्षमता नहीं। यह भी असत्य है। तू चिर-संघर्ष का सेनानी है। यदि तेरा मानव मरा नहीं होता तो तू अपने हाथ से रूपनगर की ईंट से ईंट नहीं बजाता। बच्चों को बिलखते और नारियों को आर्तनाद करते नहीं देखता। पर तू मरा हुआ है। तेरी वह आत्मा भी मर चुकी है जिसका निर्माण उस देवता ने किया है जो मनुष्य को दीन-हीन और पीड़ित नहीं देख सकता जो फूलों को हँसते कलियों को खिलते और पंछियों को अनंत आकाश में विचरते देख विभोर हो जाता है वह प्रभु किसी को परतन्त्र नहीं बना सकता। जब सृष्टि का कर्ता किसी को परतन्त्र नहीं बना सकता तो भला तुझे परतन्त्र बनानेवाला क्या ईश्वरीय-विधान का उल्लंघन नहीं

करता। यदि वह करता है तो समझ ले कि वह अपराधी है अधम्य है, पापी है।

उस स्वप्नमयी ने उसके सिर को सहलाते हुए कहा "पवन को बांध रखने की क्षमता उस अधिनायी में है जिसके संकेत पर यह पृथ्वी अपमान की छाती पर नियमपूर्वक घूमती है। यदि तेरे राजा में पवन के बांधने की शक्ति नहीं है तो समझ ले वह देवता नहीं है। झूठ मक्कारी और कपट से भोले भाले लोगों को ठगकर शासक बन बैठा है और तुम्हीं लोगों की अपराजय शक्ति से तुम्ही पर शासन करता है। फिर भला बताओ कि क्या उस अनादि ने तुम्हें इसलिये शक्ति दी है कि तुम एक दुर्बल व्यक्ति के चाकर होकर अपने ही भाइयों के सर्वनाश का कारण बनो।

तेरा हृदय प्रश्न करेगा कि मेरा स्वामी भक्त है प्रभु को पूजता है, हर सवेरे प्रार्थना करता है ?"

"मैं उत्तर दूँगी कि तेरा स्वामी उस दस्यु से कम पतित नहीं है जो वेष बदलकर सज्जनों की महिलाओं सदृश बहू-बटियों पर बलात्कार कर उन्हें शासित करता है। मरने और आत्महत्या के लिये विवश करता है। ऐसे पातकी के समक्ष जब तुम लोगों के पवित्र मस्तिष्क झुकते हैं तो क्या उस ईश्वर को अपनी सन्तान के प्रति क्षोभ और पीड़ा नहीं होगी, उसे अपने उस विधान को बनाकर राख करने की इच्छा नहीं होगी जिसमें उसने अपने हर पुत्र को स्वतन्त्र सुखी बधु और शक्तिमान बनाकर इस धरा पर भेजा है। परतन्त्रता भाग्य की देन नहीं उस आततायी का अत्याचार है जो केवल अपने सुख के लिये लाखों का सुख इस तरह हरण कर लेता है जैसे कोई चरित्रहीन किसी साध्वी का सत्य हरण कर लेता है। रही मन्दिर में जाने की बात? मन्दिर में कई व्यक्ति आते हैं उनमें आज से अधिक दर्शक होते हैं जो अपने हृदय की कुत्सित भावना को पूरा करने आते हैं जिनकी आँखें भगवान की पावन मूर्ति पर कभी रहती हैं और मन समीप खड़ी नारियों के रूप-सौन्दर्य पर। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो मन्दिर को ऐसा स्थान समझते हैं जहाँ वे अपने

परिवार को लेकर आस-पास गाँवों और नगरों की चर्चा करते हैं। कुछ सन्त होते हैं जिनकी आँखें केवल भगवान का मुख देखती हैं। कुछ मुखिये होते हैं—अहंकार के पुतले, जिनकी वाणी से अमृत टपकता है, आँखों में सहिष्णुता झलकती है पर जिनके हृदय गहरी गुफा के अन्धकार से भी अधिक कलुष होते हैं। ऐसे व्यक्ति ही देवता के रूप का सारा सुयश करके संसार से छल करते हैं। तेरा राजा ऐसा ही छली है सिंह की खाल ओढ़े भेड़िया!"

चतुरसिंह का तन पसीना-पसीना हो रहा था। वह अपने खेमे से बाहर निकलकर खुले मैदान में आ गया। स्वच्छ वातावरण ने उसके मन को शांत की। रह-रहकर उसके मन में यह आशंका धुएँ-सी उठ रही थी जो हवा को दूषित कर साँस घुटाने लगती है। उसे लग रहा था कि राजकुमारी की आत्मा प्रेत-सी उसके पीछे लग गई है। यदि वह उसकी आज्ञा नहीं मानेगा तो वह उसका अवश्य प्राणान्त कर देगी।

वह खेमे में आकर निढाल होकर शय्या पर पड़ गया। भय अब भी उसके मस्तिष्क में छाया हुआ था। स्वप्नमयी राजकुमारी की आत्मा का स्वर अब भी उसके मन में गूँज रहा था। भय से सिहरकर उसने खेमे की सारी खिड़कियाँ खोल दीं।

रात का गहरा अन्धेरा फैल चुका था। तारे पीर-भरे आँसुओं की भाँति जल रहे थे। कभी-कभी उल्लू की चीत्कार चतुरसिंह के मन को और मूर्त कर देती थी।

सारी रात करवटें बदलते-बदलते सवेरा हुआ।

राजा रिसालू ने आज्ञा दी "सेना को वापस महानगर की ओर प्रस्थान कराया जाय।"

•　　　　•

पहली बार राजा रिसालू ने चतुरसिंह के चेहरे पर ऐसी रहस्यमय वेदना देखी कि वह आशंकित हो उठे।

पूछ बैठे "क्या बात है चतुरसिंह?"

"आज मैं अस्वस्थ हूँ अन्नदाता !

"तेरे जीवन में यह नई घटना कैसी ?"

"महाराज ! मैं अब इस जीवन से ऊब गया हूँ थक गया हूँ, मुझे मुक्ति चाहिये मुक्ति !" कहकर चतुरसिंह महाराज की आँखों से दूर हो गया।

राजा रिसाल हतप्रभ रह गये। उन्हें अपने अडिग विश्वास की नींव के पत्थर सरकते नजर आये पर वह संभले। अपने आप से कह उठे "जिसने अपनी बुद्धि और बल से महानगर की प्रजा को हाथ की कठपुतली और पृथ्वी को अपनी दासी बना रखा है, उस चतुरसिंह के लिये मिट जाने की कल्पना भी अनुचित है।

सेना ने प्रस्थान किया।

रात को उन्होंने एक गाँव में डेरा डाला।

पर चतुरसिंह को हर समय राजकुमारी की छाया पीछा करती हुई लगती थी। उसका चैन चला गया। वह अधीर हो उठा।

चौदह

"जानती हूँ रामू, रात के गहरे अन्धकार में मैं समाज और धर्म के सारे बन्धन तोड़कर तेरे पास आई हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि ज़माने के साथ अनीता को लोग चरित्रहीन, कुलटा और व्यभिचारिणी कहेंगे और उस पर घृणा की कीचड़ उछालेंगे। लेकिन मैं बहुत खुश हूँ क्योंकि मैं उसके पास हूँ जिसके पास मुझे आज होना चाहिए।"

रामू अबोध बालक की भाँति अनीता के सुषमामय आनन की ओर निहार रहा था। उसके मुख पर तेज चमक रहा था, एक गूढ़ता झलक रही थी।

रामू ने सहमते-सहमते पूछा, "अज्ञानता में किया गया पाप पाप की संज्ञा से नहीं पुकारा जाता है। जब वही अज्ञानता ज्ञातव्य हो जाती है तब पाप अधर्म का जामा पहन लेता है, इसलिए हमें अन्धकार में नहीं भटकना चाहिए। पवित्र प्रेम का रूप चरित्रहीन और व्यभिचार के नाम से नहीं पुकारा गया है। भक्त ने अपने भगवान को निश्चित नहीं

होने दिया। फिर भला मैं तुम्हें कैसे लांछित होने दूँ।

"रामू! तू प्रेम के रस में इतना डूब गया है कि जीवन का मिठास और उसकी धड़कन तक को भूल बैठा है। कर्त्ता का आवश्यकता से अधिक त्याग दुर्बलता के नाम से पुकारा जाता है। मुझे वैभव-विलास धन और सुख नहीं चाहिए। मुझे चाहिए तू तेरा सुख और तेरे हृदय की मधुरता ओह! तू कितना निर्मम है?"

"मैं निर्मम नहीं हूँ चमेली! आज से पहले मैं और तू दोनों यही जानते थे कि दो तन में एक आत्मा है लेकिन आज उन दो तनों के बीच धर्म खड़ा हो गया है तू विवाहिता है और क्या किसी पत्नी के लिये यह उचित है कि वह अपने पति के साथ छल करे। समाज और धर्म की मर्यादाओं को चूर चूरकर अपने सुख के लिये अपने माँ-बाप के सर्वस्व के सुख को छीन ले।"

चमेली कुछ देर तक चिन्तामग्न बैठी रही। धर्म का भय जो उसके संस्कारों में छाया हुआ था वह उसके नस-नस में फैल गया। कुछ देर के लिए मृत्यु-सी मूर्च्छा छाई रही। चमेली के मन में आलोड़न होता रहा। आकृति पर आत्मा के विद्रोह की रेखायें आने लगीं।

"लेकिन रामू अब क्या हो सकता है? मेरे हृदय में पवित्र आग का जन्म हो चुका है। वह आग इतनी प्रचंड हो चुकी है कि अब वह बुझ नहीं सकती।"

"पवित्र आग बुझ नहीं सकती तो वह दूसरों को जला भी नहीं सकती।

"मैं किसी को भी नहीं जलाऊँगी।"

"तू अपने कुटुम्ब की मान-मर्यादा आन-बान सभी को जलाकर राख कर देगी। प्रेम का इतना भयंकर रूप उचित ही नहीं मर्म घातक है।"

चमेली अब अपने मन की व्यथा को नहीं सम्भाल सकी। सिसककर रो पड़ी, "यदि तू चाहता है कि मैं अपने प्रेम का रात के अंधकार में

छीन कर दूँ अपनी भावनाओं को अनुभूतिहीन करके निष्प्राण सी हो जाऊँ, तो मैं तैयार हूँ अन्यथा यह किसी भी स्त्री के लिए सम्भव नहीं है कि वह प्रेम किसी और पुरुष से करे और उसका ब्याह किसी और पुरुष से हो। प्रेम और पत्नी का कर्तव्य पूरे रूप से तभी पूर्ण हो सकता है जब कि इन दो वस्तुओं का स्वामी एक हो। प्रेमी ही पति हो। अब मैं तभी ही सच्चरित्र स्त्री बन सकती हूँ जब कि मैं धार्मिक विधान से भग्न करके अपने जीवन को नारकीय यातना के खौलते कुम्भी-पाक में झोंक दूँ।"

"विधि का लेख अमिट होता है चनरणा!"

चनरणा को रामू की दुर्बलता पर क्षोभ आ गया। वह कड़ककर बोली "विधि के लेख की ही बात मैं तुमसे कह रही थी। विधि का लेख यदि इतना निर्मम है तो मैं विधि के लेख की रेखाओं की मान्यताओं को अस्वीकार करके नया पथ निर्माण करती हूँ। विधि का लेख नारी के हृदय का खून इतनी क्रूरता से करता है तो मैं विधि के विधान का विरोध करती हूँ कि वह सर्वथा मिथ्या है क्योंकि पवित्र प्रेम मानव-हृदय में प्रभु की कृपा से ही पैदा होता है, यह शक्ति उसकी दयालुता से हमें प्राप्त हुई है अतः हम निर्दोष हैं।

"तू निर्दोष है यह मैं जानता हूँ। दोषी है तेरी माँ और तेरा बाप जिन्होंने तुझे आज तक नहीं बताया कि तू ब्याहता है तेरा पति साधारण नहीं महाराजपुर का अधीश्वर राजा रिपाम् है। कितना कष्टप्रद भ्रम है। चनरणा! यह संसार नारी के इस दुख से परिचित हो जाय तो शायद वह नारी का उपहास करना ही छोड़ दे। कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक ओर मैं हूँ जिसके प्रेम में तेरा अंग-अंग डूब चुका है। जहाँ तेरा प्रेम स्वतन्त्र है और कुलांचें भरता है दूसरी ओर वह पुरुष है जिसके स्वामीत्व में एक दिन तू बन्दिनी बनाकर सदैव तड़पने के लिये छोड़ दी जायगी। जहाँ तेरी भावनायें कुण्ठित होकर क्रन्दन करेंगी और प्रासाद की निष्प्राण दीवारें तुझे सांत्वना का एक शब्द भी नहीं कहेंगी। तू वह

के आँसू रोती रहेगी। तेरा हृदय हाहाकार करता रहेगा और यह समाज और संसार तेरे आँसुओं का पीना और तेरे धर्म की स्तुति गायेगा। कहेगा कि चनणा सतवंती है पतिव्रता और शुद्ध आचरणवाली है। पर वास्तव में बात विपरीत होगी। तन के साथ खेला हुआ नाटक धर्म की विजय नहीं सच मानो तो बलात्कार है। लेकिन यह समाज उसी को ही धर्म्म कहता है जिसे वह आँखों से देखता है मस्तिष्क से समझता नहीं।"

चनणा रुष्ट होकर बोली "मैं जाती हूँ रामू जो होगा देखा जायगा। तू बहुत दुर्बल है। अपने भगवान की पूजा में तू केवल भाग्य को ही महत्ता देने लगा है, पुरुषार्थ को नहीं। पर मैं तेरे बिना जीवित नहीं रह सकती।

"मुझ अकेले में साहस की शक्ति नहीं है अतः मैंने सोचा कि मैं अपने प्रेम को अक्षुण्ण रखने के लिये घात दूँ। तुझे जीवित देखना चाहता हूँ। मुझे इतना ही संतोष होगा कि तू है, बस तू है चनणा! प्रेम की उदात्त भावना में बहकर कलंक मत बनो। प्रेम त्याग माँगता है उस पर बलिदान हो जाओ।"

चनणा न जाते-जाते कहा "प्रयत्न करूँगी।"

• •

दूसरे दिन प्रातःकाल ही चनणा ने अपनी माँ से वाचिक द्वन्द शुरू कर दिया। द्वन्द का रूप भयंकर होता गया। चनणा ने अपने हाथ से अपने बालों को नोचकर कहा 'माँ सा! आपने मुझे जन्मते ही क्यों नहीं मार दिया ?"

एक माँ यदि ऐसा कर सकती है तो मैं भी कर बैठती ?" माँ का धैर्य अब से ही बना हुआ था।

"फिर आपने मेरा ब्याह बचपन में क्यों किया ?"

"तेरे पिताजी की लाचारी थी यदि वह ऐसा न करते तो राजा रिसालू तेरे पिता का सर्वनाश कर देते।"

वर्षों बाद ठाकुर सा के हाथों में चूड़ियाँ थीं ईंट का जवाब पत्थर

से नहीं दे सकते थे ?

"पहाड़ से टकराना सहज नहीं है। राजा रिसालू के हाथ मौत सवार हो रही है। उसकी शक्ति प्रजेय है, इसलिए यही उचित था कि गाँव और प्रजा के हित के लिये तेरा बलिदान किया जाय।

चनणा के कलेजे पर तीर-सा लगा। दुख से द्रवीभूत होकर उसने नैन मूंद लिये। उसे महसूस हुआ कि एक कसाई अपनी बकरी के बच्चे को खूब पाल-पोसकर बड़ा करता है और एक दिन अपनी छुरी से उसको कत्ल कर देता है। यही हाल उसका है। जिस माँ ने उसे जन्म दिया उसी माँ ने पाला केवल इसीलिए कि एक दिन वही निर्दयी राजा रिसालू के हाथों उसे सौंप देगी। वह दुख से पराभूत हो उठी। उसको मूर्छना सी आने लगी। माँ ने उसे लपककर संभाला।

स्वस्थ होते ही चनणा ने कहा "माँ जी ! आप मेरी मृत्यु का कारण बनेंगी यह मैं स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकी । ब्याह हो गया तो आपने मुझे यह क्यों नहीं बताया ? मुझे कुंवारेपन के छल में क्यों रखा ?"

माँ ने विह्वल होकर कहा "चनणा ! मैं समझती थी कि राजा रिसालू शायद इस बात को भूल जाय और तेरा फिर से ब्याह रचा दिया जाय क्योंकि इस बात को सिवाय मेरे और ठाकुर जी के कोई नहीं जानता। गाँववाले और बिरादरीवाले कभी-कभी पूछते भी तो तेरे बाबो जी यह कहकर उन्हें टाल देते कि ज्योतिषी का कहना है कि इसका ब्याह अठारह बरस के बाद ही करना अन्यथा यह जीवित नहीं रहेगी। इस प्रकार बेटा हम इस बात को इतने साल तक छिपाते रहे पर कल तुम्हें बताना ही पड़ा। कल राजा रिसालू का दूत आया था। उसने कहा कि महाराज ने फरमाया है कि हम कल दोपहर को गाँव में पधार रहे हैं। कल ही दुल्हिन की विदा की जाय। फिर भला हम बात कैसे छिपाकर रखते ?

"माँ !" चनणा माँ के गले से लिपट गई। उसके कन्धे को आंसुओं से भिगोती हुई भर्राई कंठ से बोली, "माँ जी इस पृथ्वी पर आप जैसी

हृदयहीन और निर्दयी माँ नहीं होगी।

माँ उससे विनम्र हो गई "यदि तू हमारी लाचारी जान लेती तो ऐसा नहीं कहती। तू नहीं जानती राजा रिसामू की क्रूरता और अत्याचार! उसकी हठ की अपूर्णता विनाश को न्यौता है।'

'माँ! आप कहें तो मैं भाग जाऊँ?"

बिल्ली के भाग्य का छींका टूटा। ठाकुर जी ने उसी समय प्रवेश किया। कड़ककर बोले "भागना सहज नहीं चनणा! तू हमारी लाज को ठोकर मारकर ही भाग सकती है। वह ठकुराइन की ओर उन्मुख होकर बोले "आप भी ठकुराइन सा हमारे साथ छल करने लगीं। इस नादान छोकरी के बहकावे में आने लगीं।"

'नहीं नहीं अन्नदाता आप ऐसा न कहिये। मैं तो इसे समझा रही थी कह रही थी कि "

तू अपने बाबो सा की पगड़ी उछालकर भाग जा पृथ्वीसिंह!"

एक तगड़े व्यक्ति ने बैठक खाने में प्रवेश किया।

'पृथ्वीसिंह! चनणा पर कड़ा पहरा रखो। यदि यह कहीं भाग गई तो हम तेरा सिर धड़ से अलग कर देंगे।

'ठाकुर सा ऐसा अत्याचार मत कीजिये।"

"ठकुराइन सा! बेटी की पीड़ा को मैं भी समझता हूँ। कोई भी बाप अपनी बेटी को दुखी नहीं देख सकता पर हम अपनी एक बेटी के बदले गाँव की सैकड़ों बेटियों के सुहाग को उजड़ते नहीं देख सकते। आप समझती हैं कि हम गर्ज रहे हैं? नहीं नहीं ठकुराइन नहीं हम तो अपनी लाचारी और रोने को छुपा रहे हैं। बेटा चनणा! तू अपने गाँव के ठाकर की लाचारी जानती तो यह हठ नहीं करती। खुशी से कहती कि मैं राजा रिसामू के गढ़ में जाऊँगी चाहे वह राक्षस ही क्यों न हो?" कहते-कहते ठाकुर सिसक पड़े।

चनणा का हृदय भर आया। पिता की विवशता उसकी आँखों के समक्ष नाच उठी। वह कम्पित हो उठी। वेदना से उसका चेहरा विवर्ण

हो गया। रोते हुए बोली "मैं राजा रिसालू के साथ चली जाऊँगी पर जाने से पहले आप मेरी एक इच्छा पूर्ण कर दीजिये।

"कहो।

"वचन दीजिये।"

ठाकुर ने वचन दे दिया।

"रामू से एक बार मिलने दीजिए।

ठाकुर सा की आँखों में खून उतर आया। पर वचनबद्ध होने के कारण तड़पकर रह गये। अपना मुँह दूसरी ओर घुमाते हुए बोले "मिलने दिया जायगा पर यहीं। रामू के पास संदेशा भिजवा देते हैं।"

चनणा के अधरों पर अधुभरी मुसकान नाच उठी।

• •

हलकारे ने आकर जोधी को ठाकुर जोर जी का संदेश सुनाया। रामू समीप तो नहीं था पर घर की छत पर खड़े होकर उसने सुन लिया कि हलकारा क्या कहकर जा रहा है?

वह पिताजी के पास आया। जोधी एक सूखी और कृत्रिम हँसी हँस पड़ा। उसने पूछा 'बापू! ठाकुर का हलकारा क्या कह गया?"

"कुछ नहीं कुछ नहीं।"

"बापू! तू झूठ क्यों बोलता है?"

"यह क्या कहते हो बेटा? मैं तुमसे क्यों झूठ बोलने लगा रामू!" जोधी का स्वर आर्द्र हो उठा "जरा अपनी माँ को देख तेरे दुख में बेचारी बैली[1] हो रही है। कहती है रामू खाना न खाये तो मैं कैसे खाऊँ? उसके मुखे रहने यह खाना विष के समान लगता है। जा बेटा पहले खाना खा ले तो और खा ले अपने लिये नहीं तो अपनी माँ के लिये खा ले उसने तुझे जन्म दिया है न?" जोधी की आँखों में आँसू छलछला आये। रामू ने एक बार फिर उसे घूमकर देखा पर

---

१ पगली।

खोखी ने वही उत्तर दिया जो उसने पहले दिया था।

रामू ने भी कुछ नहीं कहा। वह माँ के पास आया। माँ टूटे हुए मोढ़े पर निढाल-सी पड़ी थी। घर का सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। जगह-जगह कूड़ा-करकट बिखरा था।

"माँ!"

'कौन रामू आ बेटा कैसा है तू ?

"माँ! तू ने यह क्या हाल बना रखा है ? वह माँ के पास बैठते हुए बोला। उसके चेहरे पर गहरी उदास रेखायें उभर आईं।

'बेटा! तूने खाना खा लिया ? देख मैंने तेरे लिये बहुत चोखी राबड़ी बनाई है, खायेगा ?

रामू का हृदय भर आया—'यह माँ है जो अपनी सन्तान के दुख से दुखी और सुख से सुखी होती है।' विचारकर वह माँ की छाती से लिपट गया। माँ मधु-भरी हँसी हँस पड़ी। उठकर उसके सिर पर हल्की थपथ लगाते हुए उसने डाँटा "पगले कहीं के रोता है! अरे, मैं तो यूँ ही रोने लगती हूँ। माँ का हृदय ही ऐसा होता है बेटा उससे अपने बेटे का उतरा मुँह भी नहीं देखा जाता।"

माँ ने खाना परोसा। रामू ने बड़ी कठिनता से एक रोटी खाई। बाद में बोला "माँ! मैं जाता हूँ।"

"कहाँ ?"

"ठाकुर सा के घर, उन्होंने मुझे बुलाया है!"

"ठाकुर सा ने तुझे बुलाया है ?" माँ की मुद्रा से ऐसा मालूम दे रहा था कि उसे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

"हाँ माँ! आज बगस्या का विदाई दिन है न।"

माँ तड़ाक से बोली "विदाई के दिन वह तेरी बलि लेना चाहते हैं बेटा! मैं तुझे नहीं जाने दूँगी। 'मुझे मृत्यु से भी भय नहीं है, और मुझे अन्धक से भय है।"

"क्यों ?" रामू की दृष्टि माँ पर टिक गई।

"क्योंकि मैं माँ हूँ बेटा ! माँ का हृदय इतना कोमल और संवेदनशील न होता तो ममता का रूप इतना निखरता ही नहीं । संसार यह नहीं कहता कि जब माँ नहीं तब कुछ नहीं ।"

माँ ! तू मुझे दुर्बल कर रही है मैं जाऊँगा । यह मेरी और जगणा की अंतिम भेंट है ।"

"नहीं बेटा नहीं ।" माँ ने झपटकर रामू के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिए । ऐसा जान पड़ता था जैसे उससे कोई अपना बेटा छीन रहा है ।

"माँ ! इस समय मुझे रोक मत यदि मैं मर भी जाऊँगा तो मुझे दुःख नहीं होगा । लेकिन ठाकुर सा ने सचमुच मुझे जगणा से मिलने के लिए बुलाया है और मैं नहीं गया तो जगणा रामू से घृणा करने लगेगी और जगणा की घृणा और उसका विराग ही होगा क्या तेरा रामू सह सकेगा ? माँ ! जगणा के लिए मुझे मर जाने दो । उसके लिए मरने में मुझे असीम सुख है ।"

"तू तो प्रेम में पागल हो गया है । जगणा ने तुझ पर कौन-सा मंत्र चला दिया है कि तू मृत्यु को जीवन समझने लगा है । स्वप्न में जागरण में उठते-बैठते केवल उसी की रट लगाया करता है । पर कभी तूने यह भी सोचा कि तू किसी की आँखों का तारा है किसी बुड्ढे की लाठी है ।"

'माँ मैं सब सोचता हूँ पर जगणा के बाद नहीं । जगणा मेरी प्राण है । माँ मुझे जाने दो ।

"मैं तुझे नहीं जाने दूँगी ।" माँ ने उसे कसकर पकड़ लिया ।

"पर मैं जाऊँगा मुझे कोई नहीं रोक सकता ।

"तुझे तेरी माँ रोकेगी ।"

"माँ ! हठ न कर यदि तू चाहती है कि रामू इन पत्थरों से सिर फोड़कर मरे तो मुझे मत जाने दे । ऐसी हृदय-विदारक मृत्यु क्या तू अपनी इन आँखों से देख सकेगी ?"

"जा बेटा जा । मैं तेरी मृत्यु अपनी आँखों के सामने नहीं देख

सकती। आज न रुक क्यों गया?" माँ ने काँपते हुए रोदन-भरे स्वर में कहा।

'माँ!' रामू रोकर अपनी माँ से लिपट गया। माँ ने उसे अपने में एकाकार करते हुए कहा "यदि तेरा जीवन चनरा बन गया है तो उसी में जा मिल।"

रामू माँ के आलिंगन से मुक्त होकर घर से बाहर निकला।

जोखी ने पीछे से पुकारा "कहाँ जा रहा है रामू?"

"चनरा से मिलने।" रामू ने बिना देखे ही ओर से कहा।

जोखी चिल्लाता हुआ रामू की माँ के पास दौड़ा "यह तूने क्या किया रामू की माँ जान-बूझकर बेटे को जलती आग में भेज दिया।"

"नहीं रामू के बापू! आत्मा को परमात्मा के पास भेजा है। रामू के मन को उसके प्रेम को कोई नहीं मार सकता।"

रामू को गये अभी दस क्षण भी नहीं हुए थे कि चम्पू आया। आते ही आकुलता-भरे स्वर में बोला 'माँ तुमने रामू को वहाँ कैसे भेज दिया? जानती नहीं वहाँ उसके प्राणों "

चम्पू का गला भरभरा हो गया।

माँ यशोदा भर्राये हुए स्वर में बोली "लघु लघु के पास जा रहा है। दो लघु मिलकर विराट में लीन हो जायेंगे।"

यशोदा के नैन भर आये। वह संभलती हुई बोली "चम्पू, तू आज कल दीखता ही नहीं। रामू कह रहा था कि जोगी की स्मृति तू नहीं भूल सका।"

'माँ संसार में कुछ चरित्र ऐसे भी आते हैं जिन्हें भुलाकर भी भूल नहीं सकते। जोगी—भारी विनाश है—का प्रत्यक्ष प्रमाण है। रही मेरी बात माँ मैं बावला ठहरा इस बाँसुरी के स्वर में ही जीवन के सुख दुख को एकाकार कर दूँगा। डोली हूँ न संसार के प्रत्येक शुभ और उत्सव में मेरा मान रहता है, मैं उसी में अपने को तन्मय कर दूँगा।" वह क्षण भर के लिए रुका और बोला "सुना है कि रूपनगर विजय करके

राजा रिसालू इधर आ रहे हैं—अपनी बहू बनरा को लेने।

"हाँ।

"माँ इस धरती पर प्यार नहीं पल सकता। यह धरती सदा मनुष्य रही है और सदा मनुष्य रहेगी। परिवर्तन आयेंगे सब कुछ बदलेगा पर प्यार कभी भी निर्बाध रूप से नहीं पलेगा' अच्छा माँ मैं रामू की ओर जा रहा हूँ।"

'वापस जल्दी लौटना बेटा।

माँ के नेत्र भर आये।

चम्पू के मन में गोपी का मुख पुनः झाँकने लगा। वह गोपी को कभी नहीं भूल सकता—राधिका के रूप में बाँसुरी-वादन करती हुई गोपी का पवित्र और प्रेममय मुख।

पन्द्रह

राजा रिसालू की विशाल वाहिनी ने गाँव के बाहर पड़ाव डाला। ठाकुर साहब की आज्ञा से गाँव के सभी किसानों से बेगार ली गई। भोजन और नृत्य-गीत का प्रबन्ध भी ठाकुर ओर ही को करना पड़ा। गाँव के बाहर एक नया नगर-सा बस गया।

"मनसा की विदाई होगी।" यह बात घर-घर में फैल गई। मनसा की सहेलियाँ छिप-छिपकर राजा रिसालू को देख आयीं। देख-देखकर भिन्न-भिन्न तरह की बातें करने लगीं। कुछ जिन्हें धन और घर से मोह था बोलीं 'मनसा महारानी बनकर जीवन का आनन्द लेगी।

"इसे कहते हैं भाग्य का चक्र! कितने बड़े राजा की रानी बनी है। सुख से जी भर रहेगी।"

पर कुछ ऐसी थीं जिन्हें मनसा के भाग्य पर रोना आ रहा था। एक ने कहा "मनसा जितनी सुन्दर है राजा भी उतने ही कुरूप हैं।"

"यह ऐसी है तो वह राक्षस है।"

"उसके साथ पगला बेटी के समान लगेगी।"

जितने मुँह उतनी बातें।

राजा रिसालू कुसुम्बो पीकर मद-मस्त हो गये थे। उनके सामने गाँव की दो युवा ढोलनियाँ गीत गा रही थीं।

"थारे ढोला रो
पीवण वालों लाखां रो।"[1]

बीच में ही चतुरसिंह ने प्रवेश किया।

गीत और नृत्य रुक गया।

ढोलनियाँ कमरे से बाहर हो गईं।

"क्या बात है, चतुरसिंह! राजा रिसालू क्रोध से बोले "आजकल तू हमारे रंग में भंग करता रहता है। हमारी आज्ञा की अवज्ञा करता रहता है क्यों ऐसा क्यों?"

"खम्मा अन्नदाता दुर्जनसिंह का एक विशेष संदेशा है, उसका सुनना आपके लिये बहुत जरूरी है।"

"कहो।" उन्होंने अनिच्छापूर्वक कहा।

दुर्जनसिंह ने प्रवेश करते ही 'खम्मा अन्नदाता' की।

"कहो!"

'अन्नदाता! आपकी पगड़ी यों तो सारे गाँव उछाली जाती रही है ही लेकिन आज जबकि आप यहाँ पर उपस्थित हैं उछाली जाने लगी तब मुझसे नहीं रहा गया।"

"पहेलियाँ मत बुझाओ क्या बात है स्पष्ट शब्दों में कहो।"

"मैं राजपूतों के सम्मान को सुनार के हाथों अपमानित होते नहीं देख सकता। आपकी महारानी दिन के उजाले में गाँव के रामू नामक सुनार के अंक में पड़ी रहे, यह समस्त राजपूत जाति के लिए अपमान की बात है!"

---

१ शराब टका का है पीनेवाला लाख रुपये का है।

"क्या कहते हो ?"

"सच कहता हूँ अन्नदाता ! स्वयं ठाकुर सा ने रामू को अपने डेरे पर बुलाया है और वह जनता से घुल-मिलकर बातें कर रहा है।" दुर्जनसिंह नगर में होती चर्चा और राजा रिसालू की भली-बुरी चर्चाओं को बताते हुए कह उठा "युवतियाँ कहती हैं कि ठाकुर सा क्या ऐसा जमाई ढूँढकर लाये हैं ? कुरूप और काना ..."

"चतुरसिंह !"

"खम्मा अन्नदाता।"

सेना को कहो कि गाँव को रौंद डाले।

"महाराज ! आपके क्रोध ने सिवाय विनाश के और कुछ नहीं किया। एक बार प्रेम का सम्बल लेकर तो देखिये। कदाचित् प्रेम आपके मर्म को समझ सके।"

राजा रिसालू निराश होकर बोले "हम सब सह सकते हैं, पर यह नहीं सुन सकते कि हम कुरूप हैं, काने हैं।"

चतुरसिंह के कानों में स्वप्नमयी की वाणी गूँज उठी "मैं तेरा साथ नहीं छोड़ूँगी लेकर ही जाऊँगी।" चतुरसिंह काँप उठा। इधर-उधर ताककर बोला "मुझे क्षमा कर दो देवी क्षमा कर दो।"

"क्या बात है चतुरसिंह ?" राजा रिसालू उसका कंधा झिंझोड़कर बोले, "कहाँ है देवी ? कौन है देवी ?"

चतुरसिंह की साँस तेज चल रही थी। शरीर पसीना-पसीना हो रहा था। भयभीत स्वर में बोला "अन्नदाता ! कोई मेरा गला दबोच रहा है। रूपनगर की राजकुमारी हर समय मेरा पीछा करती रहती है। कहती रही है कि मैं तुझे लेकर जाऊँगी मैं तुझे लेकर जाऊँगी।"

"तुम्हें हमारे होते कोई नहीं ले जा सकता।"

चतुरसिंह सैनिक-मुद्रा में खड़ा हो गया। ध्यान से राजा रिसालू के मुख की ओर निहारने लगा। उसकी आँखें भयानक हो गई थीं। आग सी बरस रही थी जैसे उसके अन्तर का युग-युग से दबा विद्रोह आज

अचानक विस्फोट करना चाहता है।

"ऐसे क्यों घूर रहा है ?"

"देख रहा हूँ अन्नदाता कि आप वास्तव में कुरूप हैं या नहीं ?"

राजा रिसालू का हाथ अपनी तलवार की मूठ पर चला गया।

"आप सचमुच कुरूप हैं, काले हैं।"

"चतुरसिंह होश में आ।"

"आज ही होश में आया हूँ अन्नदाता देवता और दैत्य का रूप धारण कर आप प्रजा को यह भुलावा नहीं दे सकते कि आप मनुष्य नहीं हैं। जब प्रजा आपको मनुष्य के रूप में देखेगी तो यह नहीं भूलेगी कि आप कुरूप और काले हैं। अन्नदाता ! भगवान ने आपको शक्ति दी है इसलिए नहीं कि आप विनाश करें।"

"चतुरसिंह, हमें उपदेश मत दो।"

"उपदेश नहीं दे रहा हूँ। कह रहा हूँ, देवता और दैत्य का रूप छोड़-कर मनुष्य बनिए। एक बार मनुष्य बनकर उसका रस भी लीजिए। कुरूप और काले रहकर भी प्रेम कीजिए, प्यारकी बनिए "

राजा रिसालू ने झपटकर चतुरसिंह की गर्दन धड़ से अलग कर दी। दुर्जनसिंह भागने लगा। राजा रिसालू ने कहा "पकड़ लो इसे !"

दुर्जनसिंह पकड़ लिया गया। वह बहुत चीखा और चिल्लाया पर सब व्यर्थ। चतुरसिंह की लाश को उसी समय जलाने की आज्ञा राजा रिसालू ने दे दी।

चतुरसिंह का खून खेमे में बिखरा पड़ा था लाल-लाल। राजा रिसालू को पहली बार यह महसूस हुआ कि उन्होंने उस व्यक्ति की हत्या की जिसने उनकी अपार सेवायें की थी। लेकिन वह व्यक्ति भी क्या जो राजा की शक्ति का अपनी बुद्धि से मूल्यांकन करने बैठे। हमें तो ऐसा दास चाहिये जो केवल आज्ञा मानना जानता हो—"दुर्जनसिंह !"

उन्होंने तुरन्त दुर्जनसिंह को बुलाया और कहा "हम तुझे चतुरसिंह की जगह रखते हैं। तू केवल हमारी आज्ञा का पालन करना

"मैं भी जाऊँगा।"

"दुर्जनसिंह !" राजा रिसालू गम्भीर होकर बोले, "कोई ऐसा उपाय निकाल कि रामू मर जाय और चन्द्रा रानी को पता भी न लगे।"

"यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है।"

"हम देखेंगे। क्योंकि रामू है, तब तक चन्द्रा हमें हृदय से प्रेम नहीं कर सकती। सुनते हैं, वह अत्यन्त रूपवती है।"

"हाँ अन्नदाता साक्षात् रूप की देवी है।"

राजा रिसालू की आँखों में वासना चमक उठी।

सोलह

जिस समय रामू धनरुपा के घर पहुँचा ठाकुर जोर जी बरे की
ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े हुक्का पी रहे थे। एक हाथ में उनका हुक्का अपनं
हाथ में पकड़ रखा था।

रामू ने निर्भयता से पूछा "धनरुपा कहाँ है, ठाकुर सा ?"

ठाकुर जोर जी के मन में आया कि तलवार से इसकी गर्दन धड़
अलग कर दें, पर वचनबद्ध होने के कारण वह बोल नहीं सके। फिर भ
उनकी भाव-मुद्रा से स्पष्ट मालूम हो रहा था कि उन्हें रामू की
निर्भयता अच्छी नहीं लगी। रामू ने इस तरह पूछा जैसे धनरुपा उस
अपनी घरवाली हो।

रामू ने ठाकुर सा को निरुत्तर देखकर दुबारा पूछा "ठाकुर स
धनरुपा कहाँ है ?"

"भीतर चले जाओ, वापस भी जल्दी आना।"

रामू ठाकुर सा की बात का उत्तर दिये बिना ही भीतर चला ग

बलखा निढाल पड़ी थी जैसे उसमें प्राण नहीं। रामू को देखते ही उससे लिपटकर रो पड़ी। रामू भी अपने आँसुओं को नहीं थाम सका।

कुछ देर तक दोनों अपने-अपने हृदय की वेदना आँखों की राह बहाते गए। रामू ने उसके चेहरे पर अपनी दृष्टि जमाते हुए कहा "बलखा! अब फिर कब मिलेंगे?"

बलखा ने रुँधे कंठ से उत्तर दिया 'जब प्रभु ने चाहा।

रामू कुछ देर तक विचारता रहा। उसकी भाव भंगिमा से स्पष्ट मालूम दे रहा था कि वह कोई अकल्पनीय निर्णय करने जा रहा है। उसने छत से लटकते हुए झाड़-फानूस पर दृष्टि जमाते हुए कहा 'बलखा! तुने कहा था न कि मैं कायर हूँ। मैं भी सोचकर जान पाया कि मैं कायर हूँ, पर अब मेरी कायरता मेरे मन से लुप्त हो गई है। मैंने निश्चय किया है कि हम दोनों भाग चलें।

बलखा जड़वत् हो गई। विस्फारित नैनों से वह कुछ देर तक रामू को देखती रही तब वह अपने नैनों में अम्बु भरकर बोली "यह तू उस समय कहता जब मेरा हृदय इस विनाश से अपरिचित था जिसका सम्बन्ध समस्त गाँव से है तो मैं तेरे साथ भाग चलती। पर अब मैं भी विवश हूँ रामू! मुझे न पाकर राजा रिसालू गाँव का सर्वनाश कर देगा, जलाकर राख कर देगा। फिर हमारा प्रेम सैकड़ों का जीवन ले लेगा।"

"और यदि प्रेम विनाश के बीज बोता है वह प्रेम प्रेम नहीं। प्रेम त्याग चाहता है कल्याण की कामना करता है तभी तो इस जगत में प्रेम दुःखान्त माना गया है।"

बलखा ने कहा "रामू! इस लौकिक तन पर राजा रिसालू का अधिकार होने पर तू यह न समझ बैठना कि बलखा का प्रेम मर गया है। यह हमारा गाँव के लिए त्याग है। पर यह भी ध्रुव सत्य है कि हम जरूर मिलेंगे।"

"विश्वास पर मानव जीवित है, बलखा जप-तप भजन-पूजा और लौकिक-पारलौकिक ये सभी व्यर्थ हैं जबकि इनमें विश्वास न हो।

विश्वास के सम्मुख कार्य असम्भव नहीं, अच्छा किया।"

"रामू! एक बार मुझे चरण-स्पर्श करने दे।"

रामू आर्द्र होकर बोला "चरण-स्पर्श सदैव भक्त करता है। मैं ही तेरा भक्त हूँ, तेरे रूप का, तेरे यौवन का, तेरे मन का, तेरे तन का। यह अधिकार मेरा है।"

चनणा ने उसे रोकते हुए कहा "नहीं, भक्त की भक्ति यदि ईश्वर के दर्शन की क्षमता रख लेती है तब उसे नत होने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह आलिंगन के योग्य हो जाता है।"

तब रामू और चनणा आलिंगन में आबद्ध हो गये। अन्तिम मिलन अनुभूति विरह की चिर वेदना, कसक और तड़प।

बाहर से ठाकर की अधिकारपूर्ण आवाज आई "रामू!"

रामू घर के बाहर निकल गया।

• • •

चनणा को सजाकर तैयार किया गया। उसकी सहेलियाँ आज रो-रोकर निढाल हो रही थीं। राजा रिसालू भी वहाँ उपस्थित थे। रामू चनणा की डोली के साथ चल रहा था—जैसा बुद्धि-शून्य शक्ति हीन जड़-सा। पर आज गाँववालों ने देखा कि रामू की आँखों में आँसू नहीं, होंठों पर तड़प नहीं, हृदय में कसक नहीं। पर वह अपने आपसे किसी महा अशुभ कामना कर रहा था कि चनणा की आत्मा पर किया गया इस निरंकुश शासक द्वारा बलात्कार एक प्रचंड विद्रोह के रूप में उत्पन्न होगा। एक विनाश की वर्षा होगी, महा अंधकार छा जायेगा, प्रकृति तांडव करेगी। तब धीर की संतान राजा रिसालू मरु की निष्ठुर चट्टानों से टकरा-टकराकर अपने प्राण देगा।

उसने निश्वास छोड़ा। राजा रिसालू की दृष्टि रामू पर गई। वह उसे इस तरह देखता रहा जैसे मंदिर के देवता को देखता था। उसे उसमें मनु की संतान के दर्शन हुए। वह विचलित हुआ, डरा और मन-ही-मन काँपने लगा।

कोसी नाव को पार कर चुकी थी । बनराणा ने अपने प्रियजनों से अन्तिम विदा ली । रामू की आत्मा का सयीत मरने लगा । उसका प्रकाश मिटने लगा । वह आँधी की भाँति वन की ओर भाग गया ।

• • •

संध्या की धूम्र प्रतीची के प्रांगण से धीरे-धीरे उभरने लगी थी । राजा रिसालू ने अपना तीसरा डेरा एक जंगल के मध्य डाला । डेरों के थोड़ी दूर पर एक कुआँ था । पास ही गाँव पड़ता था ।

दुर्जनसिंह अभी-अभी कुएँ पर जाकर आया था । वह बहुत ही प्रसन्न जान पड़ता था जैसे उसे कोई बड़ा खजाना प्राप्त हो गया हो । बात थी कि उसने रामू को बावरा की हालत में देखा था ।

राजा रिसालू चिन्तित थे । भय की हल्की रेखायें उनके चेहरे पर ऐसी छाई हुई थी जैसे नील निलय में हल्की-हल्की सफेद बादलों की रेखायें छा जाती हैं ।

"आप चिन्तित क्यों हैं अन्नदाता ?" दुर्जनसिंह ने सिर नवाकर कहा । उसके मुख पर धृष्टता-भरी मुसकान नाच रही थी ।

"हमें रामू का देखकर मन्दिर के देवता की याद हो आई । ऐसा मालूम देता है कि वह प्रभु की संतान है अवतार है । हमारे अपराधों और पापों को वह जान गया है ।"

दुर्जनसिंह जोर का अट्टहास कर उठा । राजा रिसालू को यह अट्टहास अशिष्ट लगा । वह चीखकर बोले, "दुर्जन ! राजा रिसालू की आज्ञा के बिना हँसना रोना उठना-बैठना भी अपराध कहलाता है ।"

"खम्मा अन्नदाता ! वह प्रभु की सतान है न मैं उस संतान को अभी समाप्त कर देता हूँ" दुर्जनसिंह संभलकर बोला ।

"कैसे ?"

"मुझे बनराणा का ओढ़ना चाहिए ।"

राजा रिसालू ने ओढ़ना मंगवा कर दे दिया । दुर्जन ओढ़ना लेकर कुएँ की ओर चला । कुएँ पर जाकर उसने वह ओढ़ना रखा और फिर

वह सिसक-सिसककर रोने लगा । रामू एक वृक्ष की शाखा को पकड़े पकड़े 'चमरा चमरा' चिल्ला रहा था। दुर्जन को देखकर बोला, "ऐ भाई ! तू क्यों रोता है ? तुझे क्या दुख है ?"

दुर्जनसिंह रोता-रोता बोला "तू मुझे नहीं पहचानता रामू ? मैं दुर्जन हूँ दुर्जन ! क्या तुम पागल हो गए हो ?"

"हाँ भाई तू कोई भी क्यों न हो ? पर अब ये आँखें सिवाय चमरा के किसी को नहीं पहचान सकतीं ।"

"और तेरी चमरा इस कुएँ में गिरकर मर गई ।"

"क्या कहते हो ?"

"देखो यह पड़ा उसका ओढ़ना विदाई की बेला में पहना था न ?"

रामू ने ओढ़ने को देखा और फिर चीखकर रो पड़ा "चमरा ! चमरा !!"

दुर्जन भावार्द्र रोदन-भरे स्वर में बोला "रामू ! बेचारी चमरा के मुख पर अन्तिम समय तेरा ही नाम था अपने रामू का ।"

"भाई ! मेरे भगवान को उस दुष्ट ने मुझसे विलग कर लिया । यह राजा रिसालू हमारी बाजुओं की शक्ति से हमारे ही हृदयों पर अधिकार करके हमारी सबसे प्रिय वस्तु को छीन लेता है । यह दुष्ट वह स्वामी है, जो प्रजा के सम्मुख अपने को सेवक कहता है और फिर सत्ता के उन्माद में हमें अपना दास बनाकर रखता है। उसका भय हमारी आत्मा में मृत्यु पर्यन्त काले बादलों की भाँति इसलिए छाया रहता है कि वह हमें अपने आपको प्रभु का अंश बताता है। ऐ भाई ! जो व्यक्ति नारी के हृदय को आघात पहुँचाता है उसको उन धार्मिक बन्धनों का भय दिखाता है जिनको उसी ने बनाया है, वह व्यक्ति क्या कल नये धार्मिक बन्धन बनाकर हमारा जीवन नरक नहीं बना सकता ? देखो उसने मेरी चमरा को छीना मेरे हृदय के उस दीपक को बुझाया जो मुझे आलोक दिखाता था। वह व्यक्ति कल तुम्हें भी समाप्त कर सकता है ।"

रामू के नेत्र अश्रु से परिपूर्ण हो गए। स्वर काँप उठा "मेरी ——

इस कुएँ में है भाई ! तूने चमेली को देखा है, वह प्रभु की भाँति पवित्र थी और शिशु की भाँति निर्दोष ।' रामू कुएँ की ओर निहारने लगा "चमेली ! तू मेरी सर्वस्व थी आत्मा और परमात्मा भी । जब तू नहीं तब मैं क्यों ? इस लघु को उस विराट में मिल जाना चाहिये इस अकिंचन को उस अनन्त में लीन हो जाना चाहिये ।" कहते-कहते रामू कुएँ में कूद गया ।

एक असह्य वेदना-भरा मौन पल भर के लिए वहाँ पर छा गया ।

दुर्जन वहाँ से उठा । शोर का तूफान देखते-देखते उठा । घोर अन्धकार चहुँ ओर फैल गया । दुर्जन चमेली के समीप आकर बोला "चमेली ! तेरा रामू तेरे लिए कुएँ में कूदकर मर गया ।"

"मेरा रामू !"

'हाँ तेरा ।"

चमेली आँधी की तरह कुएँ की ओर भागी । वह 'राम राम्' चिल्लाती जा रही थी ।

दुर्जन भागकर राजा रिसालू के पास पहुँचा ।

बादलों की गर्जन सूखी धरती को कह रही थी—हम तेरी प्यास अभी बुझा देते हैं, तेरी पीर अभी हर लेते हैं ।

"अन्नदाता की जय !"

'क्या बात है ?"

अंधेर हो गया ।

"कैसे ?"

"चमेली रानी उस कुंए की ओर भाग गई है । रामू को मैंने ठिकाने लगा दिया है ।"

"अच्छा !" राजा रिसालू कुंए की ओर झपटे ।

धरती उनके भारी-भरकम कदमों से काँप रही थी ।

निविड़ अन्धकार छाया हुआ था । बिजली काँपी । राजा रिसालू ने देखा कि चमेली कुएँ के पास खड़ी है । वह कह रही है "रामू ! मेरा

या मुझे छोड़कर मत जा मेरे भाई मेरे भाई !"

राजा रिसालू चिल्लाए, "रानी जा ! रुक जाइए ! रुक जाइये दुर्जन पकड़ो, पकड़ो !"

पर चम्पा कुएं में कूदकर अपने देवता के पास चली गई।

प्रकृति कुपित हो गई।

लपलपाती नागिन-सी बिजली कौंधकर पृथ्वी पर पड़ी और अपनी लपटों से राजा रिसालू और दुर्जन को जलाकर राख कर दिया।

धरती का पाप खत्म हो गया। उसकी पीर मिट गई।

दूसरे दिन जब गाँव से राजा रिसालू की सेनायें दीवान जी के नेतृत्व में लौट गईं तब गाँववाले उस कुएं पर आए। गाँववालों ने सुना कि एक दर्द-भरा गीत गूंज रहा है—

रिमझिम-रिमझिम मेंह पड़ेगी
और ठंडी चाली बाल्
मन के बिछड़या रे के
राम् प्यारा कद भी मिलस्यो

दर्द एक चिरन्तन दर्द प्रीत की व्यथा लहराने लगी और आज भी राजस्थान की धरती इस पीर को अन्तर्हित किए जा रही है मानो योगी—हमेशा सदा पल-पल !

इस कुएँ में है भाई ! तूने चमणा को देखा है, वह प्रभु की भाँति पवित्र थी और शिशु की भाँति निर्दोष।" रामू कुएँ की ओर निहारने लगा, "चमणा ! तू मेरी सर्वस्व थी आत्मा और परमात्मा थी। जब तू नहीं तब मैं क्यों ? इस अणु को उस विराट में मिल जाना चाहिये इस अकिंचन को उस अनन्त में लीन हो जाना चाहिये।" कहते-कहते रामू कुएँ में कूद गया।

एक असह्य वेदना-भरा मौन पल भर के लिए वहाँ पर छा गया।

दुर्जन वहाँ से उठा। चोर का तूफान देखते-देखते उठा। और अन्धकार चहुँ ओर फैल गया। दुर्जन चमणा के समीप जाकर बोला "चमणा ! तेरा रामू तेरे लिए कुएँ में कूदकर मर गया।"

"मेरा रामू !"

"हाँ तेरा।"

चमणा आँधी की तरह कुएँ की ओर भागी। वह 'रामू-रामू' चिल्लाती जा रही थी।

दुर्जन भागकर राजा रिसालू के पास पहुँचा।

बादलों की गर्जन भूमी धरती को कह रही थी—हम तेरी प्यास अभी बुझा देते हैं तेरी पीर अभी हर लेते हैं।

"अन्नदाता की जय !"

"क्या बात है ?

"अँधेर हो गया।

"कैसे ?"

"चमणा रानी तो कुँए की ओर भाग गई है। रामू को मैंने ठिकाने लगा दिया है।"

"चमणा !" राजा रिसालू कुँए की ओर झपटे।

धरती उनके भारी-भरकम कदमों से काँप रही थी।

निविड़ अन्धकार छाया हुआ था। बिजली कौंधी। राजा रिसालू ने देखा कि चमणा कुएँ के पास खड़ी है। वह कह रही है 'रामू ! ठहर

ना मुझे छोड़कर मत जा ! मैं आई मैं आई !"

राजा रिड़मल चिल्लाए, "रानी मां ! एक आश्चर्य ! एक आश्चर्य ! दुर्जन पकड़ा, पकड़ो !"

पर धनसा कुंए में कूदकर अपने देवता के पास चली गई ।

प्रकृति कुपित हो गई ।

सरसराती सर्पिणी-सी बिजली कौंधकर पृथ्वी पर पड़ी और अपनी लपटों से राजा रिड़मल और दुर्जन को जलाकर राख कर दिया ।

धरती का पाप खत्म हो गया । उसकी पीर मिट गई ।

दूसरे दिन जब गाँव से राजा रिड़मल की सेनायें दीवान जी के नेतृत्व में लौट गईं तब गाँववाले उस कुएँ पर आए । गाँववालों ने सुना कि एक दर्द भरा गीत गूंज रहा है—

झिरमिर-झिरमिर मेंहू बरसै
और ठंडी चालै बायू
मन के बिरहवा रे के
राम् प्यारा कब जी मिलस्यो

यों एक निरन्तर दर्द गीत की व्यथा लहराने लगी और आज भी राजस्थान की धरती इस पीर को अन्तर्हित किए आ रही है, यानी पोंपी—इंपिला तथा पन-पन ।

इस कुएँ में है माई ! तूने चमरणा को देखा है, वह प्रभु की भाँति पवित्र और पितृ की भाँति निर्दोष ।" रामू कुएँ की ओर निहारने लगा "चमरणा ! तू मेरी सर्वस्व थी आत्मा और परमात्मा भी । जब तू नहीं तब मैं क्यों ? इस अणु को उस विराट में मिल जाना चाहिये इस अकिंचन को उस अनन्त में लीन हो जाना चाहिये ।" कहते-कहते रामू कुएँ में कूद गया ।

एक भयङ्कर वेदना-भरा मौन पल भर के लिए वहाँ पर छा गया ।

दुर्जन वहाँ से उठा । घोर का तूफान देखते-देखते उठा । घोर अन्धकार चहुँ ओर फैल गया । दुर्जन चमरणा के समीप जाकर बोला "चमरणा ! तेरा रामू तेरे लिए कुएँ में कूदकर मर गया ।"

"मेरा रामू !"

"हाँ तेरा ।"

चमरणा आँधी की तरह कुएँ की ओर भागी । वह 'रामू रामू' चिल्लाती जा रही थी ।

दुर्जन भागकर राजा रिसामू के पास पहुँचा ।

बादलों की गर्जन मूकी धरती को कह रही थी—हम तेरी प्यास अभी बुझा देते हैं तेरी पीर अभी हर लेते हैं ।

"अन्नदाता की जय !"

"क्या बात है ?"

"अंधेर हो गया ।

कैसे ?"

"चमरणा रानी सा कुएँ की ओर भाग गई है । रामू को मैंने ठिकाने लगा दिया है ।"

"चमरणा !" राजा रिसामू कुँए की ओर झपटे ।

धरती उनके भारी भरकम कदमों से काँप रही थी ।

तिमिर अन्धकार छाया हुआ था । बिजली कौंधी । राजा रिसामू ने देखा कि चमरणा कुएँ के पास खड़ी है । वह कह रही है "रामू ! ठहर

जा मुझे छोड़कर मत जा मैं आई मैं आई !"

राजा रिसालू चिल्लाए, "रानी जा ! रुक जाइए ! रुक जाइये दुर्जन पकड़ो पकड़ो !"

पर चमणा कुँए में कूदकर अपने देवता के पास चली गई।

प्रकृति कुपित हो गई।

लपलपाती सांपिन-सी बिजली कौंधकर पृथ्वी पर पड़ी और अपनी लपटों से राजा रिसालू और दुर्जन को जलाकर राख कर दिया।

धरती का पाप खत्म हो गया। उसकी पीर मिट गई।

दूसरे दिन जब गाँव से राजा रिसालू की सेनायें दीवान जी के नेतृत्व में लौट गई तब गाँववाले उस कुएँ पर आए। गाँववालों ने सुना कि एक दर भरा गीत गूँज रहा है—

झिरमिर-झिरमिर मेंहु वरसैगी
और ठंडी चालै वायू
अब के बिछड़या रे के
राम् प्यारा कद भी मिलस्यो

वर्षं एक चिरन्तन दर्द गीत की व्यथा बहराने लगी और आज भी राजस्थान की धरती उस पीर को अन्तर्हित किए जा रही है जाती रहेगी—हमेशा सदा पल-पल !